आरआईएस परिचर्चा पत्र श्रंखला

भारत में मूल निवासी होने का आशय तथा अन्तर्राष्ट्रीय संदर्भ

प्रोफेसर टी.सी. जेम्स

परिचर्चा पत्र # 272

आरआईएस
विकासशील देशों की अनुसंधान एवं सूचना प्रणाली

भारत में मूल निवासी होने का आशय तथा अन्तर्राष्ट्रीय संदर्भ

प्रोफेसर टी.सी. जेम्स

परिचर्चा पत्र # 272

आरआईएस
विकासशील देशों की अनुसंधान एवं सूचना प्रणाली

कोर IV-B, चौथी मंजिल, भारत पर्यावास केन्द्र, लोधी मार्ग, नई दिल्ली–110 003, भारत। दूरभाष 91–11–24682177–80
फैक्सः 91–11–24682173–74, ईमेलः dgoffice@ris.org.in
वेबसाइटः www.ris.org.in

आरआईएस चर्चा पत्र शोध के प्रारंभिक निष्कर्षों का प्रसार करने का इरादा रखते हैं संस्थान के कार्य कार्यक्रम या संबंधित अनुसंधान के ढांचे के भीतर किया जाता है। फीडबैक और टिप्पणियों को इस पते पर भेजा जा सकता हैः ईमेलः dgoffice@ris.org.in आरआईएस चर्चा www.ris.org.in पर उपलब्ध हैं

भारत में मूल निवासी होने का आशय तथा अन्तर्राष्ट्रीय संदर्भ

प्रोफेसर टी.सी. जेम्स*

सारः जैविक संसाधनों के सतत विकास में जनजातीय लोगों की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। यह चर्चा विभिन्न अन्तर्राष्ट्रीय मंचों पर जैविक संसाधनों और पारम्परिक ज्ञान के साथ–साथ जनजातीय अधिकारों तक पहुंच और लाभ–साझाकरण से सम्बन्धित मुद्दों पर भारत के रुख के लिए आधारभूत रही है। लेकिन जब इनसे जुड़े बाहरी मुद्दों को उठाया जाता है, तो भारत को बहुत सतर्क रुख अपनाना चाहिये। 'मूलनिवासियों' के अधिकारों पर संयुक्त राष्ट्र घोषणा, 2007 पर भारत की आपत्तियों और अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन के मूलनिवासी और जनजातीय जनसंख्या सम्मेलन, 1989 का अनुमोदन न करने के कारण अकादमिक और नीतिगत हलकों में काफी चर्चा हुई है। यह प्रपत्र अन्तर्राष्ट्रीय समझौतों में 'मूलनिवासी' शब्द के उपयोग की जांच करता है और अन्तर्राष्ट्रीय और घरेलू, दोनों चर्चाओं में भारत की सोच पर प्रकाश डालता है। यह भारत के जनगणना दस्तावेजों, संविधान सभा की बहस और अन्य आधिकारिक अभिलेखों के माध्यम से इस शब्द के इतिहास को खोजने का प्रयत्न करता है। भारत में अनुसूचित जनजातियों के विकास के पहलुओं को भी संक्षेप में इस प्रपत्र में शामिल किया गया है।

मुख्य शब्दः मूल निवासी, संविधान, अधिकार, अनुसूचित जनजाति, पारम्परिक ज्ञान।

परिचय

मूलनिवासियों के मामलों के लिए अन्तर्राष्ट्रीय कार्य समूह (आई.डबल्यू.जी. आई.ए.) के वेबसाइट पर अपनी टिप्पणी में कहा हैः

> "भारत ने मूलनिवासी लोगों के अधिकारों पर संयुक्त राष्ट्र घोषणा के पक्ष में इस शर्त पर मतदान किया कि स्वतन्त्रता के बाद सभी भारतीय मूलनिवासी हैं।"[1]

इस विषय पर भारत की सोच पर कतिपय हल्कों से चर्चा सुनने को मिली है। हाशिए पर पड़े लोगों के अधिकारों पर जताई गई भारत की आलोचना, भारत के रुख की पृष्ठभूमि की अपर्याप्त समझ पर आधारित है। यह प्रपत्र

* विजिटिंग फेलो, आर.आई.एस.। यह प्रपत्र आर.आई.एस. के महानिदेशक प्रोफेसर सचिन चतुर्वेदी की पहल के बिना सम्भव नहीं होता। उनके साथ चर्चा और शुरुआती मसौदे पर उनकी टिप्पणियों से इसे बहुत फायदा हुआ है। कई अन्य लोगों के साथ विचार–विमर्श से भी इस प्रपत्र और चर्चा को अत्यधिक लाभ प्राप्त हुआ है, जिनमें प्रमुख हैं श्री हर्ष चौहान, अध्यक्ष, राष्ट्रीय अनुसूचित जनजाति आयोग, जिन्होंने इस विषय पर विस्तृत चर्चा की और कई नई जानकारियां प्रदान की। लेखक उन सभी का आभारी है। विचार व्यक्तिगत हैं।

भारत द्वारा दी गई सावधानी बरतने के बृहत्तर सन्दर्भ का पता लगाने की प्रस्तुति करता है।

भारत ने अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर इन विषयों और मुद्दों से सम्बन्धित जैविक विविधता, पारम्परिक ज्ञान, पारम्परिक चिकित्सा प्रणालियों और बौद्धिक सम्पदा अधिकारों के सम्बन्धों के संरक्षण से जुड़े मुद्दों पर हमेशा सक्रिय और सकारात्मक भूमिका निभाई है। देश ने इनमें शामिल लोगों और समुदायों के अधिकारों की रक्षा के लिए अन्तर्राष्ट्रीय कानूनी उपकरणों के प्रारूपण में भी महत्वपूर्ण योगदान दिया है। भारत उन कुछ देशों में से एक है जिन्होंने जैविक विविधता पर कन्वेंशन के लागू होने से पहले ही आनुवंशिक संसाधनों और सम्बद्ध पारम्परिक ज्ञान के लिए स्वदेशीय पहुंच और लाभ–साझाकरण तन्त्र विकसित किया था और पूर्व–सूचित सहमति के लिए जोर दिया था (चतुर्वेदीरू 2007)। विकासशील देशों की अनुसन्धान और सूचना प्रणाली (आर.आई.एस.) जैसी संस्थाओं सहित भारतीय शिक्षाविद भी जैविक संसाधनों और पारम्परिक ज्ञान के संरक्षण व सुरक्षा और पारम्परिक ज्ञानधारकों के अधिकारों की सुरक्षा से सम्बन्धित अध्ययनों में काफी सक्रिय थे[2]। भारत मानवाधिकारों पर वैश्विक घोषणा (1957) का भी एक हस्ताक्षरकर्ता है। अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर इन मुद्दों पर भारतीय रुख हमेशा अपनी संस्कृति और लोकाचार पर आधारित रहा है और विकासशील देशों के हितों के लिए सूक्ष्म–सन्दर्भित होता रहा है।

मानवाधिकारों पर चर्चाओं ने अलग–अलग स्थिति वाले लोगों को सन्दर्भित करने के लिए उपयुक्त शर्तों पर प्रश्न उठाए हैं, चाहे वह ऐतिहासिक, सामाजिक या आर्थिक रूप से हो। ऐसा ही एक शब्द 'मूलनिवासी' है। संयुक्त राष्ट्र संघ ने पहली बार आधिकारिक तौर पर इस शब्द का इस्तेमाल सतत विकास पर विश्व शिखर सम्मेलन, 2002,[3] की अपनी राजनीतिक घोषणा में किया था, हालांकि 'मूलनिवासी' लोगों पर 1982 में ही संयुक्त राष्ट्र कार्य के एक कार्यशील गुट की स्थापना की गई थी। पीटर्स और मीका (2017) के अनुसार, इससे पहले, इस शब्द को संयुक्त राष्ट्र के आधिकारिक दस्तावेजों में उपयोग के लिए "अभी भी बहस के तहत" माना जाता था।[4] उपरोक्त शिखर दस्तावेजों में, जैसा कि संयुक्त राष्ट्र द्वारा प्रकाशित किया गया है, यह शब्द 173 बार प्रकट होता है, हालांकि ये सभी शब्द 'लोग' को परिभाषित नहीं करते हैं।[5] 'मूलनिवासी लोग' शब्द से 'मूलनिवासी' की मौखिक अभिव्यक्ति वाले अर्थ से भिन्न कई अर्थों की उत्पत्ति होती है। इस शब्द का शब्दकोशीय

अर्थ "किसी विशेष स्थान पर स्वाभाविक रूप से उत्पन्न या घटित होना" हैः "मूल" शब्द और इसकी उत्पत्ति 17वीं शताब्दी के मध्य में पाई जाती है।[6] व्युत्पत्ति के अनुसार यह लैटिन शब्द इण्डिजीन से लिया गया है जिसका अर्थ है "भीतर पैदा हुआ" (पिल्लई, 2014)। सम्बन्धित शब्द 'इण्डिजीन' 16वीं शताब्दी के अन्तिम हिस्से में पाया जाता है[7]। सर थॉमस ब्राउन ने 1646 में प्रकाशित अपनी पुस्तक, स्यूडोडॉक्सिया एपिडेमिका में अमेरिका के मूल निवासियों के सन्दर्भ में इसका इस्तेमाल इस वाक्य में किया था, "हालांकि इसके कई हिस्सों में वर्तमान में स्पेन के अधीन सेवा करने वाले नीग्रो के झुण्ड हों, फिर भी वे सभी कोलम्बस की खोज के बाद से अफ्रीका से लाए गए थे और अमेरिका के स्वदेशीय या उचित मूलनिवासी नहीं हैं"[8] (इस शब्द पर जोर दिया गया है)।

ऐसा लगता है कि यह शब्द व्यापक अकादमिक चर्चाओं में शामिल हो गया है। 20वीं सदी की शुरुआत में, विशेष रूप से मैक्सिकन क्रान्ति (1910–1920) के बाद इसका प्रचलन बढ़ा। इसने उन लोगों के बारे में औपनिवेशिक धारणाओं में बदलाव की शुरुआत की, जिन्हें उपनिवेशवादियों ने अपने अधीन कर लिया था और जिनकी भूमि पर उन्होंने बड़े पैमाने पर पलायन करवाने के साथ ज्यादातर सशस्त्र और हिंसक कब्जा कर लिया था । यह दोनों उत्तर और दक्षिण अमेरिका में, ऑस्ट्रेलिया और न्यूजीलैण्ड हुआ था, जहां मूल आबादी पूरी तरह से हाशिये पर धकेल दी गई थी। वहां के मूल लोगों को कुछ खास बाड़ों में जैसे उत्तर के देशों में, और दक्षिण के देशों में किसी भी राजनीतिक या आर्थिक शक्ति से प्रभावी ढंग से बाहर रखा गया था, हालांकि मेस्टिजों की एक बड़ी संख्या थी। ये वे क्षेत्र थे जहां 'इतिहास' केवल औपनिवेशिक शक्तियों का था[9]।

20वीं शताब्दी की शुरुआत में, विद्वानों ने इस विचार को व्यक्त करना शुरू कर दिया, भले ही देर से, कि यूरोपीय लोगों के आगमन से पहले अमेरिका और ऑस्ट्रेलिया–न्यूजीलैण्ड में लोग रह रहे थे और उनकी अपनी संस्कृति और पाद्धतियां थी। उन क्षेत्रों के पहले के निवासी 'मूलनिवासी' लोग थे (बेटीलः 1998)। इतिहास का यह सम्पूर्ण सफाया भारत और अन्य एशियाई देशों जैसे इण्डोनीशिया, श्रीलंका आदि में इतने बड़े पैमाने पर नहीं हुआ, जो उपनिवेशवाद के अधीन रहे। लोगों का मूल रंग नहीं बदला, जैसा कि संयुक्त राष्ट्र संघ में इण्डोनीशिया के प्रतिनिधि द्वारा व्यक्त किया गया था कि "औपनिवेशीकरण के समय इण्डोनीशिया की पूरी आबादी अपरिवर्तित रही"[10]।

कोई सामूहिक नरसंहार या बड़े पैमाने पर आप्रवासन नहीं हुआ, जिसने वहां के मूल निवासियों को अल्पसंख्यक बना दिया। नतीजतन, जनसंख्या का मूल और गैर–मूल में कोई विभाजन नहीं हुआ। तथापि, जैसा कि अक्सर अन्तरराष्ट्रीय चर्चाओं में होता है, औद्योगिक पश्चिमी जगत द्वारा उपयोग की जाने वाली शब्दावली को एशियाई और अफ्रीकी देशों के इतिहास पर भी मढ़ा गया है। ऐसी चर्चाओं में पश्चिम द्वारा इस तथ्य को उपेक्षित कर दिया गया कि भारत जैसे देशों में सत्ता अन्ततः 'मूल निवासियों' को हस्तान्तरित कर दी गई थी, क्योंकि अमेरिका और ऑस्ट्रेलिया में वहां आकार बसने वालों की संख्या मूल निवासियों से कहीं अधिक थी। इन नए बसने वाले लोगों ने राजनीतिक शक्ति अपने पूर्व औपनिवेशिक स्वामियों से प्राप्त कर ली थी। वैसे सतही तौर पर यह यूरोपीय हाथों से स्थानीय लोगों में सत्ता का हस्तान्तरण था, लेकिन वास्तव में ये स्थानीय लोग उसी जाति के थे जिसने यूरोप से आकर उस भूमि का उपनिवेशीकरण किया था। यह राजनीतिक सत्ता उन लोगों के साथ साझा नहीं की गई जो औपनिवेशिक लोगों से पहले उन भौगोलिक क्षेत्रों में रहते आए थे। दक्षिण अफ्रीका जैसे कुछ अफ्रीकी देशों में जहां उपनिवेशवासी भी बस गए थे, वहां मूल निवासियों को अधीनता में रखा गया, लेकिन उनका उस तरह सामूहिक उन्मूलन नहीं किया गया जैसा कि उत्तरी अमेरिका में देखा गया। दक्षिण अफ्रीका के मामले में, अंग्रेजों ने 1934 के बाद से स्थानीय गोरे लोगों द्वारा स्वशासन की अनुमति दी। उन स्थानीय गोरों ने रंगभेद की नीति का अनुसरण किया, और उस देश के अश्वेत अफ्रीकियों (जो वहां के मूल निवासी हैं), जिनकी आबादी देश का 80 प्रतिशत हिस्सा था, को अपने राजनीतिक अधिकारों व शक्ति की प्राप्ति के लिए एक लम्बी लड़ाई लड़नी पड़ी, जो अन्ततः उन्हें 1994 में ही प्राप्त हुई। स्पष्ट रूप से जो बात सामने आती है, वह यह है कि 'स्वदेशीय समस्या' मूल रूप से राजनीतिक शक्ति से सम्बन्धित है; एक वास्तविक समस्या केवल वहीं पर है जहां सत्ता वास्तव में उन लोगों के साथ साझा नहीं की गई थी जो औपनिवेशिक अतिक्रमण के समय उन–उन भूमियों के निवासी थे।

भारत जैसे देशों में विषय अलग है। इसलिए, मूल और बाहर से आकर बसनेवाले लोगों का विभाजन भारत जैसे संदर्भ में मान्य नहीं हैं। देश के जनजातीय लोगों को 'मूल निवासी' के रूप में इंगित करना यह सुझाव देता है कि देश के अन्य लोग गैर–मूल निवासी या विदेशी हैं। भारत जैसे देश के विषय में यह बात उपयुक्त नहीं हैं। अतः संयुक्त राष्ट्र संघ में चर्चाओं के

दौरान काफी पहले से भारत ने यह विचार प्रतिपादित किया कि इस देश के सभी लोग यहां के मूल निवासी ही हैं।

संयुक्त राष्ट्र संघ और अन्य अन्तर्राष्ट्रीय मंचों में भारत

13 सितंबर 2007 को आयोजित संयुक्त राष्ट्र संघ की 107वीं पूर्ण बैठक में एक प्रस्तावना[11] के माध्यम से मूल निवासी लोगों के अधिकारों पर संयुक्त राष्ट्र घोषणापत्र को अपनाया गया। यह एक गैर–बाध्यकारी प्रस्तावना है। जहां 143 देशों ने इसके पक्ष में मतदान किया और 4 (संयुक्त राज्य अमेरिका, कनाडा, ऑस्ट्रेलिया और न्यूजीलैण्ड) ने इसके विरोध में, वहीं 11 देश मतदान से अनुपस्थित रहे[12]। भारत के पड़ोसी, बांग्लादेश और भूटान मतदान से अनुपस्थित देशों में थे।

यद्यपि भारत ने प्रस्ताव के पक्ष में मतदान किया, संयुक्त राष्ट्र में भारत के प्रतिनिधि श्री अजय मल्होत्रा ने भारत में सभी 'मूल निवासी लोग' कौन हैं, इस पर भारत की स्थिति पर एक अर्हक वक्तव्य देते हुए कहाः

> जहां घोषणा में यह परिभाषित नहीं किया गया था कि मूलनिवासियों की बनावट क्या है लोगों, मूलनिवासी अधिकारों का विषय स्वतन्त्र देशों में लोगों से सम्बन्धित है, जिन्हें देश में रहने वाली आबादी से उनकी वंशजता के कारण, अथवा एक भौगोलिक क्षेत्र–विशेष जो उस देश पर विजय या उपनिवेश की स्थापना, या वर्तमान राज्य की सीमाओं की स्थापना के समय उस देश का था, जो उस देश में निवास करते आए हैं, और जिन्होंने अपनी कानूनी स्थिति के बावजूद, अपने कतिपय या सभी सामाजिक–आर्थिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक संस्थानों को बनाए रखा, और इसलिए उन्हें स्वदेशीय माना जाता है[13]।

भारत इस प्रस्तावना में आत्मनिर्णय से सम्बन्धित धारा में भी संलग्न था। उस मुद्दे पर भारत के प्रतिनिधि ने कहाः

> आत्मनिर्णय के अधिकार के सन्दर्भ में, उनकी यह समझ थी कि आत्मनिर्णय का अधिकार केवल विदेशी प्रभुत्व के तहत लोगों पर लागू होता है और यह अवधारणा सम्प्रभु स्वतन्त्र राज्यों या लोगों के एक वर्ग या राष्ट्र पर लागू नहीं होती है, जो राष्ट्रीय अखण्डता का सार है। घोषणा में स्पष्ट किया गया है कि मूलनिवासियों द्वारा अपने आन्तरिक और स्थानीय मामलों से सम्बन्धित मामलों में स्वायत्तता या स्वशासन के अधिकार के साथ–साथ उनके स्वायत्त कार्यों के वित्तपोषण के साधनों और तरीकों के सन्दर्भ में आत्मनिर्णय के अधिकार का प्रयोग किया जाएगा। इसके अलावा, धारा 46 में स्पष्ट रूप से कहा गया है

कि घोषणा में कुछ भी किसी भी राज्य, लोगों, समूह या व्यक्ति के लिए किसी भी गतिविधि में शामिल होने या घोषणापत्र के विपरीत कोई कार्य करने के अधिकार के रूप में व्याख्या नहीं की जा सकती है। इसी आधार पर भारत ने घोषणापत्र को अपनाने के पक्ष में मतदान किया था[14]।

'मूलनिवासी' शब्द का प्रयोग 1957 में पहली बार किसी अन्तर्राष्ट्रीय संगठन के विचार–विमर्श और उपकरणों में, मूलनिवासियों के संरक्षण और एकीकरण से सम्बन्धित अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन (आई.एल.ओ.) द्वारा आयोजित स्वतन्त्र देशों में अन्य जनजातीय और अर्ध–जनजातीय जनसंख्या (सम्मेलन क्रमांक 107) सम्मेलन में हुई चर्चा में किया गया था (क्साक्साः 3590)। तथापि, ऐसा प्रतीत होता है कि भारत ने उस समय 'मूलनिवासी' शब्द पर कोई आपत्ति नहीं जताई या कोई चेतावनी नहीं दी क्योंकि इस शब्द को अधिकारों और सशक्तिकरण जैसे मुद्दों को नहीं जोड़ा गया था। तब मूलनिवासी और जनजातीय लोगों को बृहत्तर सामाजिक व्यवस्था में एकीकृत करने पर ध्यान केन्द्रित किया गया था। लेकिन जब केन्द्र के मुद्दे बदल गए, तो भारत ने भारतीय सन्दर्भ में इस शब्द की प्रासंगिकता के स्पष्टीकरण की आवश्यकता महसूस की (क्साक्साः 3591)। भारत ने अभी तक 1989 सम्मेलन की पुष्टि नहीं की है और 1957 के सम्मेलन के साथ बना हुआ है, जिसकी उसने 29 सितम्बर 1958 को पुष्टि की थी। वास्तव में, एशिया से केवल नेपाल ने और अफ्रीका से केवल मध्य अफ्रीकी गणराज्य ने 1989 के इस सम्मेलन की पुष्टि की। विचार–विमर्श के दौरान, भारतीय प्रतिनिधि ने दोहराया किः

"भारत में जनजातीय लोगों की तुलना उनकी समस्याओं, हितों और अधिकारों के मामले में कुछ अन्य देशों की मूलनिवासियों की जनसंख्या से नहीं की जा सकती थी। इस कारण से, इसमें शामिल कुछ जटिल और संवेदनशील मुद्दों पर अन्तर्राष्ट्रीय मानक स्थापित करने का प्रयास प्रतिकूल परिणामों वाला साबित हो सकता है।"[15]

अन्य एशियाई देशों जैसे चीन, बांग्लादेश, म्यांमार और इण्डोनीशिया ने भी इस शब्द के वैचारिक दृष्टिकोण के कारण 'मूल' शब्द पर आपत्ति जताई। उनका सामान्य दृष्टिकोण यह था कि 'मूलनिवासी' की अवधारणा "यूरोपीय औपनिवेशिक समझौते के सामान्य अनुभव का एक उत्पाद है, जो एशिया के उन हिस्सों के लिए मौलिक रूप से अनुपयुक्त है, जिन्होंने प्रचुर यूरोपीय उपनिवेशों के बसाए जाने का अनुभव नहीं किया"।[16] इस दृष्टि से या तो सभी लोग उनके देशों में मूलनिवासी हैं या कोई मूलनिवासी नहीं हैं, जैसा

कि सम्मेलन में किया गया है। अफ्रीकी देशों ने यह विचार अपनाया कि सभी अफ्रीकी लोगों को तकनीकी रूप से मूलनिवासी माना जाए क्योंकि वे उस आबादी के वंशज हैं जो यूरोपीय उपनिवेशों की स्थापना से पहले उस महाद्वीप में रहते थे[17]। उनकी राय में, इस तरह के शब्दों का प्रयोग उन लोगों को अलग–थलग करने के लिए, जो इस महाद्वीप में सहस्राब्दियों से रह रहे थे, कलह पैदा करेगा और नव–स्वतन्त्र देशों के एकीकरण के रास्ते में बाधा उत्पन्न करेगा।

संयुक्त राष्ट्र संघ और अन्य अन्तर्राष्ट्रीय निकायों में 'मूलनिवासियों' की परिभाषा

ऐसे कई अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन और समझौते हैं[18] जो 'मूलनिवासियों' के अधिकारों और विकास के मुद्दों से व्यवहार करते हैं लेकिन अभिव्यक्ति की एक वैश्विक रूप से स्वीकार्य परिभाषा अभी भी कायम नहीं हुई है। संयुक्त राष्ट्र संघ के आर्थिक और सामाजिक मामलों का विभाग अपनी वेबसाइट पर मूलनिवासियों को "अद्वितीय संस्कृतियों के उत्तराधिकारी और व्यवसायी और लोगों और पर्यावरण से सम्बन्धित तरीकों" के रूप में वर्णित करता है और यह कहा जाता है कि उन्होंने "उन सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक और राजनीतिक विशेषताओं को बरकरार रखा है जो कि उन प्रभावी समाजों से अलग है जिनमें वे रहते हैं"।[19] लेकिन इसे स्वदेशीय या मूलनिवासी लोगों की औपचारिक परिभाषा के रूप में नहीं माना जा सकता है। इसके अलावा ऐतिहासिक दृष्टिकोण से, इसमें विशिष्टता का अभाव है; यह किसी भी समुदाय पर लागू हो सकता है जिसकी एक विशिष्ट संस्कृति या सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक विशेषता है।

2007 के संयुक्त राष्ट्र के प्रस्ताव संख्या 61/295 में 'मूलनिवासियों' की कोई परिभाषा नहीं थी, लेकिन एक रिपोर्ट में (मूलनिवासियों की आबादी के खिलाफ भेदभाव की समस्या पर भेदभाव की रोकथाम व अल्पसंख्यकों के संरक्षण पर संयुक्त राष्ट्र उपायोग, 1981, के विशेष प्रतिवेदक जोस आर. मार्टिनेज कोबो द्वारा अध्ययन,) जो संयुक्त राष्ट्र संघ की चर्चाओं का आधार बना था, मूलनिवासियों की अवधारणा को निम्नलिखित रूप से समझाया गयाः

मूलनिवासी समुदाय, लोग और राष्ट्र वे हैं जो आक्रमणों से पूर्व और उपनिवेशों की स्थापना से पूर्व के समाजों के साथ एक ऐतिहासिक निरन्तरता

रखते हुए अपने क्षेत्रों में विकसित हुए और खुद को उन क्षेत्रों या उनके कुछ हिस्सों पर वर्तमान में प्रभावी समाज के इतर घटकों से अलग मानते हैं। वे वर्तमान में समाज के गैर–प्रभावी घटकों के रूप में विद्यमान हैं और अपने स्वयं की सांस्कृतिक परिपाटियों, सामाजिक संस्थाओं और कानूनी प्रणालियों के अनुसार, लोगों के रूप में अपने निरन्तर अस्तित्व के आधार के रूप में, अपने पूर्वजों के क्षेत्रों, और उनकी जातीय पहचान को संरक्षित करने, विकसित करने और भावी पीढ़ियों तक प्रसारित करने के लिए दृढ़ संकल्पित हैं[20]।

रिपोर्ट में बताया गया है कि किन कारकों पर ऐतिहासिक निरन्तरता का निर्धारण विचार किया जाना चाहिए। ये हैं:

- "पैतृक भूमियों, या उनमें से कम से कम एक हिस्सा पर कब्जा
- इन भूमियों के मूल निवासियों के साथ सामान्य वांशिकता।
- सामान्य रूप से संस्कृति, या उसकी विशिष्ट अभिव्यक्तियों में (जैसे धर्म, एक जनजातीय व्यवस्था के तहत रहना, एक मूलनिवासी समुदाय की सदस्यता, परिधान, आजीविका के साधन, जीवन शैली, आदि)
- भाषा (चाहे केवल भाषा के रूप में, मातृभाषा के रूप में, घर पर या परिवार में संवाद के अभ्यस्त साधन के रूप में, या मुख्य, पसन्दीदा, आदतन, आम या सामान्य भाषा के रूप में)
- देश के कुछ हिस्सों में या विश्व के कुछ क्षेत्रों में निवास
- अन्य प्रासंगिक कारक"।[21]

क्षेत्र–विशेष में उपनिवेशों के कायम होने से पूर्व निरन्तर अस्तित्व के अलावा, यह दो महत्वपूर्ण अतिरिक्त कारक भी लाता हैय यथा, समाज में गैर–प्रभुत्व और विशिष्टता। ये तत्व उन लोगों को 'मूलनिवासियों' के दायरे में शामिल करना सम्भव बनाते हैं जिनके साथ पक्षपात होता है या राजनीतिक सत्ता से वे वंचित हैं। ये घटक मानव अधिकारों के सन्दर्भ में महत्वपूर्ण और आवश्यक हैं, लेकिन शायद अन्य स्थितियों में नहीं। हालांकि इस बयान ने अन्तर्राष्ट्रीय मंचों पर मूलनिवासियों पर चर्चा में स्पष्टता लाने का प्रयास किया, लेकिन भारत के मामले में यह जटिलताएं पैदा करता है। यह पैतृक भूमि के कब्जे के पहले कारक से लेकर कुछ हिस्सों में निवास तक विस्तृत है। भारत विश्व का एक सूक्ष्म रुप है। हमारे पास अलग–अलग भाषाएं बोलने वाले, अलग–अलग पन्थों का पालन करने वाले, अलग–अलग

रीति–रिवाजों, अलग–अलग व्यवसायों और अलग–अलग वंशों से सम्बन्ध रखने वाले लोग हैं। भारत में मानवाधिकारों के मुद्दे ' मूलनिवासी' और 'विदेशी' के प्रश्न की अपेक्षा सुस्पष्ट आयाम हैं।

भाषा निश्चय ही किसी भी समाज के लिए एक महत्वपूर्ण चिह्नक है, किन्तु भाषाओं के मामले में भी हम पाते हैं कि इंडोयूरोपीय भाषाओं (76.89 प्रतिशत लोगों द्वारा इस गुट की 24 भाषाएं बोली जाती हैं), द्रविड़ (20.82 प्रतिशत लोगों द्वारा 17 भाषाएं बोली जाती हैं), ऑस्ट्रो–एशियाई (1.11 प्रतिशत लोगों द्वारा 14 भाषाएं बोली जाती हैं), तिबेटो–बर्मी (01.00 प्रतिशत लोगों द्वारा 66 भाषाएं बोली जाती हैं) और सेमाइटो–हैमिटिक (0.01 प्रतिशत लोगों द्वारा 1 भाषा बोली जाती हैं) जैसी अनेक भाषाएं देश में बोली जाती हैं। ताई–कड़ई और ग्रेट अण्डमानी भाषा परिवारों की भाषाएं बोलनेवाले लोग भी हैं, यद्यपि उनकी संख्या काफी कम है।[22] भारतीय संविधान की आठवीं अनुसूची में 22 भाषाएं शामिल हैं।

यह भाषाई वैविध्य जनजातीय जनसंख्या में भी देखी जाती है। विभिन्न जनजातियां ऑस्ट्रो–एशियाई (मोंख्मर, मुण्डली सन्थाली, आदि), द्रविड (गोण्डी और कुरुख बोलियां) और भारोपीय (भीलों की बोली) भाषा परिवारों की भाषाएं बोलती हैं। अब जहां भाषा पर आधारित वर्गीकरण की ही यह स्थिति हो, हम भारत के जनजातीय व गैर–जनजातीय लोगों की जातीयता को लेकर किसी निष्कर्ष पर नहीं पहुंच सकते हैं। संस्कृत जैसी अन्य कई प्राचीन भाषाएं, जिन्हें भारत की 'पुरातन' भाषाएं कही जाती हैं।[23] पाली व प्राकृत जैसी अन्य प्राचीन भाषाएं भी हैं जो वर्तमान में सामान्य बोलचाल में उपयोग नहीं की जाती हैं लेकिन अध्ययन और धार्मिक कर्मकाण्डों के लिए उनका उपयोग किया जाता है। इनमें से अनेक ने देश में आज बोली जानेवाली भाषाओं को जन्म दिया है, लेकिन सामान्य रूप से इन्हें भारतीय भाषाएं कहा जाता है। ये भाषाएं अनेक शताब्दियों के दौरान देश में ही जन्मीं और विकसित हुईं। भारत में जिन भाषाओं को 'विदेशी' कहा जाता है, वे हैं अंग्रेजी, फ्रान्सीसी और पुर्तगाली, जिनका प्रवेश लगभग पूर्ण रूप से देश में औपनिवेशिक दौर में ही हुआ। अरबी, रूसी, चीनी और जापानी जैसी भाषाएं भी यहां पायी जाती हैं, जिनकी पहचान स्पष्ट रूप से अन्य देशों से की जा सकती है और जिनकी उत्पत्ति और विकास उन्हीं देशों में हुआ है।[24] यहां किसी भाषा के दमन का प्रश्न है ही नहीं। जब एक व्यक्ति की मातृभाषा वह भाषा है जिसका उद्भव और विकास भारत में हुआ, अर्थात वह एक स्वदेशीय

भाषा है, उस व्यक्ति को क्या कभी 'गैर–मूलनिवासी' समझा जा सकता है?

अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन (आई.एल.ओ.) ने 1957 में मूलनिवासी और जनजातीय जनसंख्या सम्मेलन (क्रमांक 107) को अपनाते हुए संयुक्त वाक्यांश "मूलनिवासी और जनजातीय जनसंख्या" का उपयोग किया है। वर्तमान में सम्मेलन वर्ष 1989 (संख्या 169)[25] का समझौता प्रचलन में है। ये सम्मेलन ' मूलनिवासियों' शब्द की कोई औपचारिक परिभाषा नहीं देते हैं। तथापि, 1989 के समझौते के अनुच्छेद 1 में कहा गया है कि यह समझौता निम्नलिखित लोगों पर लागू होता है:

- "(ए) स्वतन्त्र देशों में आदिवासी लोग जिनकी सामाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक स्थिति उन्हें राष्ट्रीय समुदाय के अन्य वर्गों से अलग करती है, और जिनकी स्थिति पूरी तरह या आंशिक रूप से अपने स्वयं के रीति–रिवाजों या परम्पराओं या विशेष कानूनों या विनियमों द्वारा नियन्त्रित होती है;
- (बी) स्वतन्त्र देशों में लोग, जो देश में निवास करने वाली आबादी से उनके वंश के कारण मूलनिवासी माने जाते हैं, या एक भौगोलिक क्षेत्र जिसमें देश का सम्बन्ध है, बाह्य–विजय या उपनिवेशों के कायम होने या वर्तमान राज्य की सीमाओं की स्थापना के समय और जो, अपनी कानूनी स्थिति के बावजूद, अपने स्वयं के सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक संस्थाओं में से कुछ या सभी को बनाए रखते हैं।"[26]

इस विवरण में कोबो की परिभाषा के अधिकांश घटक शामिल हैं। यह परिभाषा लोगों को 'मूलनिवासी' कहलाने के लिए एक समय–सम्बद्ध योग्यता प्रदान करती है, अर्थात, "विजय या उपनिवेशवाद या वर्तमान राज्य की सीमाओं की स्थापना के समय।" जहां वर्तमान देश के उपनिवेशीकरण या गठन की अवधि के कुछ गुण हैं, लेकिन कुछ समूहों को 'मूलनिवासी' के रूप में अलग करना तथा अन्य को पूर्वजों की वंशावली से बाहर रखना, जो समुदाय अवधि–चिह्न की शर्त पूरा करते हैं, मुद्दा बन सकते हैं।

विश्व बौद्धिक सम्पदा संगठन (डब्ल्यू.आई.पी.ओ.) एक अन्तर–सरकारी समिति की एजेन्सी के माध्यम से पारम्परिक ज्ञान के संरक्षण के लिए दो दशकों से भी अधिक समय से सम्भावित अन्तर्राष्ट्रीय कानूनी उपकरणों पर चर्चा कर रहा है। इस समिति की बैठकों में मूलनिवासियों के प्रतिनिधि पर्यवेक्षक के रूप में भाग लेते हैं। फिर भी, इस संगठन ने औपचारिक रूप

से इस शब्द को परिभाषित नहीं किया है। लेकिन समिति द्वारा विचाराधीन पारम्परिक ज्ञान के संरक्षण पर एक कानूनी दस्तावेज के प्रारूप पाठ में, 'पारम्परिक ज्ञान' को परिभाषित करते समय मूलनिवासी शब्द का प्रयोग किया गया है।

> पारम्परिक ज्ञान से तात्पर्य मूलनिवासी, स्थानीय समुदायों और/या अन्य लाभार्थियों, से उत्पन्न ज्ञान से है जो गतिशील और विकसित हो सकता है और बौद्धिक गतिविधि, अनुभवों, आध्यात्मिक साधनों, या एक पारम्परिक सन्दर्भ में या उसमें अन्तर्दृष्टि का परिणाम है, जो जानकारी, कौशल, नवाचार, अभ्यास, शिक्षण, या सीखने सहित भूमि और पर्यावरण से जुड़ा हो सकता है।[27]

वर्गाकार कोष्ठक वाले शब्दों और उनकी अभिव्यक्तियों को अभी तक सर्वसम्मति नहीं मिली है। 'मूलनिवासी' वाक्यांश में 'निवासी' एक ऐसा विवादास्पद शब्द है जिसे 'मूल' शब्द द्वारा विशेषणयुक्त किया जाता है।

विश्व स्वास्थ्य संगठन (डब्ल्यू.एच.ओ.) ने भी निम्नलिखित शब्दों में स्वास्थ्य सेवाओं के प्रावधान के सन्दर्भ में 'मूल आबादी' वाक्यांश को इस रूप में परिभाषित किया हैः "वे समुदाय जो भौगोलिक रूप से अलग पारम्परिक आवास या पैतृक क्षेत्रों के भीतर रहते हैं, या जुड़े हुए हैं, और जो आधुनिक राज्यों के निर्माण और वर्तमान सीमाओं को परिभाषित करने से पहले उन क्षेत्रों में एक विशिष्ट सांस्कृतिक समूह का हिस्सा होने के रूप में वहां मौजूद रहे समूहों के वंशज के रूप में स्वयं की पहचान करते हैं। वे आम तौर पर अपनी सांस्कृतिक और सामाजिक पहचान, और सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक संस्थाओं को मुख्यधारा या प्रभावी समाज या संस्कृति से भिन्न रखते हैं"।[28]

'मूलनिवासी' की सरल परिभाषाओं में से एक यह है कि वे "ऐसे लोग हैं जो प्राचीन काल से सभी महाद्वीपों में बसे हुए हैं।[29] वे अपनी भूमि पर रहते आए हैं, अपने सांस्कृतिक मूल्यों को बनाए रखे हैं, अपने पर्यावरण को अक्षुण्ण रखते हुए उसे विकसित करते आए हैं और सदियों से अपनी परम्पराओं को जीवित रखे हुए हैं।[30] यह परिभाषा बिना किसी राजनीतिक प्रभाव के है और 'जनजाति' 'समूह' 'समुदाय', जैसे शब्दों से परहेज करता है और उसमें शामिल करने के लिए एक कट–ऑफ वर्ष या अवधि निर्धारित नहीं करता है, सिवाय इसके कि उन समुदायों को उन क्षेत्रों में बहुत लम्बे समय से निवास करते रहना चाहिए था।

भारतीय जनसंख्याः ऐतिहासिक प्रवास

भारत ने हाल की शताब्दियों में लोगों के बड़े पैमाने पर कोई आप्रवासन[31] नहीं देखा है। तिथि–निर्धारण के लिए डी.एन.ए. का उपयोग करने वाले नवीनतम अध्ययनों के अनुसार, भारत में अन्तिम बड़ा आप्रवासन 1000 ईसा पूर्व[32] से पहले हुआ था। इससे पहले, अलग–अलग समय पर आप्रवासन की अलग–अलग लहरें हुईं। भारत सरकार का एक प्रपत्र भारत में प्रवास की लहरों का वर्णन इस प्रकार करता हैः

> "यूरोपीय मूल के लोगों (शायद टोकारियन लोगों) का विस्तार सम्भवतः लगभग 3,800 साल पहले शुरू हुआ था। और शायद 1,000 साल (या अधिक) पहले, उरल्स के दक्षिण में, काला सागर के उत्तर में और पश्चिमी कजाकिस्तान में भारोपीय भाषाओं के बोलने वाले पश्चिमी और पूर्वी दिशाओं में चले गए, और अन्त में दक्षिण में चले गए, और (सम्भवतः) द्रविड़ या दक्षिण एशियाई क्षेत्र के अन्य मूल निवासियों के साथ घुलने–मिलने लग गए"।[33]

इसके बाद, भारत में लोगों की कोई बड़ी आमद नहीं हुई है। तब से लेकर अब तक देश के कई हिस्सों में शासन व्यवस्था कई बार बदली है। अपने शासन के अन्त में देश छोड़कर जानेवाले एकमात्र शासक अंग्रेज थे। अन्य शासक भारतीय समाज और संस्कृति में समा गए। जनजातियों सहित विभिन्न पन्थों और जातियों के लोगों ने देश के छोटे या बड़े हिस्सों में अपना दबदबा बनाया और उसे रखा। आस्था की बहुलता जनजातियों और गैर–जनजातिय, दोनों की एक सामान्य दशा है। शताब्दियों की कालावधि के दौरान, भारत में एक अनूठी मिश्रित संस्कृति का उदय हुआ। यह एक ऐसी संस्कृति है जो एकता में विविधता को प्रतिबिम्बित करती है।

पुरातात्विक उत्खनन, नृविज्ञान, भाषा विज्ञान और आनुवंशिक अनुक्रमण पर आधारित हाल के अध्ययनों ने भारत में होमो सेपियन्स (नर जाति) के प्रमुख आप्रवासन की एक से अधिक लहरों की पहचान की है।[34] पहली लहर उन लोगों की थी जो लगभग 70,000 साल पहले अफ्रीका से बाहर आए हुए शुरुआती समूहों से सम्बन्धित थे, और पश्चिम एशिया, भारत, दक्षिण पूर्व एशिया और ऑस्ट्रेलिया चले गए। उन्होंने लगभग 65,000 साल पहले भारत में प्रवेश किया होगा। लिटिल अण्डमान में ओंगे जनजाति के लोग, जिनकी कुल संख्या अब 100 से भी कम है, इस समूह के वंशज माने जाते हैं। उनकी शारीरिक संरचना ऑस्ट्रेलियाई एबॉरिजिन आदिवासियों के समान है। डेविड

रीच (2018) ने देखा कि ये लोग "यूरेशियन मुख्य भूमि के लोगों से हजारों वर्षों पहले अलग हो चुके थे।"[35] तथापि, आनुवंशिक रूप से, वर्तमान भारतीय आबादी की नींव पहला समूह है जो अफ्रीका से बाहर आया था, क्योंकि आज हमारी जीनोम–व्यापी आनुवांशिकता का आधे और दो–तिहाई के बीच का हिस्सा इसी समूह से आता है (जोसेफ 2018); "लगभग सभी क्षेत्रों, सभी भाषाई समूहों और देश की सभी जातियों और जनजातियों में सबसे पहले के इन भारतीयों की आनुवंशिक छाप है, जैसा कि वैज्ञानिक अध्ययनों ने बार–बार दिखाया है।"[36] प्रवासन की दूसरी लहर ईरान के जाग्रोस क्षेत्र से थी, जो ज्यादातर कृषक थे। पश्चिम यूरेशियन लोगों का भारत में प्रमुख प्रवास कांस्य युग (9,000–7,000 साल पहले) या उसके बाद हुआ था। यूरेशियन लोग जो बाद में भारत में पहले बसने वालों के साथ घुलमिल गए थे, वे लोग थे जो समय के विभिन्न बिन्दुओं पर भारत में प्रवास करने से पहले लम्बे समय तक यूरेशिया के स्टेप्स इलाकों में रहते आए थे। प्रवास की तीसरी लहर दक्षिणपूर्व एशिया से आई जो मुण्डारी और खासी जैसी ऑस्ट्रो–एशियाई भाषाओं को लेकर आए। भारत में प्रवासन की आखिरी बड़ी लहर 2,000 और 1,000 ईसा पूर्व (जोसेफ, 2018) के बीच स्टेप्स के भारोपीय भाषा बोलने वाले चरवाहों द्वारा थी।

नरसिम्हन और अन्यों (2018) के अनुसार, "अनिवार्य रूप से वर्तमान पूर्वी और दक्षिणी एशियाई लोगों (दक्षिणी एशियाई लोगों में पश्चिम यूरेशियन से सम्बन्धित मिश्रण से पहले) के सभी वंश एक प्राक्कल्पनात्मक एकल पूर्व की ओर प्रसार से उद्भूत माने जाते हैं, जिसने एक छोटी कालावधि में ए.ए.एस.आई. (दक्षिण भारतीयों के प्राचीन पूर्वज) यानी पूर्वी एशियाई, ओङ्गे और आस्ट्रेलियाई लोगों की ओर जाने वाली वंशावली को जन्म दिया।"[37] 2019 के अपने प्रपत्र में नरसिम्हन और अन्य यह दर्शाते हैं कि आधुनिक दक्षिण एशियाई लोगों में वंश का प्राथमिक स्रोत ईरान और दक्षिण पूर्व एशिया के शुरुआती शिकारी–संग्रहकर्ताओं से सम्बन्धित लोगों के बीच एक प्रागैतिहासिक आनुवंशिक ढलान है।[38] डेविड रीच (2018) जिन्होंने इसका विस्तृत अध्ययन किया था, ने डी.एन.ए. के आधार पर भारतीय आबादी ने दो धाराएं पाई हैं, अर्थात् पैतृक दक्षिण भारतीय (ए.एस.आई.) और पैतृक उत्तर भारतीय (ए.एन.आई.)[39] जिनसे वर्तमान जनसंख्या की शुरुआत हुई है। उनके अध्ययन का नतीजा यह है कि "मुख्य भूमि भारत में आज हर कोई पश्चिम यूरेशियन से सम्बन्धित वंश का एक मिश्रण है, यद्यपि अलग–अलग

अनुपात में, और वंश विविध पूर्वी एशियाई और दक्षिण एशियाई आबादियों से अधिक निकटता से सम्बन्धित है। भारत में कोई भी समूह आनुवंशिक शुद्ध ता का दावा नहीं कर सकता है" (यहां जोर दिया गया है)।[40] यह मिश्रण 20 से 80 प्रतिशत तक का है। रीच ने देखा कि मुख्यभूमि के लोगों के बीच, "कोई भी समूह मिश्रण से अप्रभावित नहीं है, न ही उच्चतम और न ही निम्नतम जाति, जिसमें जाति व्यवस्था से बाहर रहने वाली गैर–हिंदू आदिवासी आबादी शामिल है।"[41] जैसा कि त्रिपाठी और अन्यों (2008) ने पहले देखा था, भारत में जाति व्यवस्था केवल 3,000–5,000 वर्ष पुरानी है और यह देखते हुए कि यह अवधि मानव विकास–क्रम की तुलना में काफी हाल की है। जाति व्यवस्था का भारतीय आबादी की आनुवंशिक बनावट पर उतना सशक्त प्रभाव नहीं हो सकता है। त्रिपाठी ने यह भी पाया कि जाति और सामाजिक–सांस्कृतिक सीमाओं के पार जनन–कोशिकाओं का प्रवाह काफी मात्रा में है। उनके अध्ययन के अनुसार, भौगोलिक दूरी का सामाजिक–सांस्कृतिक पृष्ठभूमि की तुलना में फाइलोजेनेटिक सम्बन्ध पर अधिक शक्तिशाली प्रभाव पड़ता है। हालांकि, अन्य अध्ययनों के आधार पर त्रिपाठी और अन्यों ने द्रविड़–भाषी लोगों को भारत के सबसे पुराने निवासियों के रूप में प्रस्तावित किया, जिन्होंने लगभग 10,000–15,000 साल पहले भारत में प्रवेश किया था। उनके अनुसार, एक और प्रवासन लगभग 4,000 साल पहले मध्य एशियाई स्टेप्प से देहाती खानाबदोशों का आगमन था, जो अपने साथ भारोपीय भाषाओं को लेकर आए थे। ये सभी आनुवंशिकीविद् जो महत्वपूर्ण बिन्दु सामने लाते हैं, वह यह है कि भारतीय जनसंख्या विभिन्न जीनों का मिश्रण है, लेकिन यह मिश्रण जातियों और जनजातियों की आर पार है।

दुनिया में दूसरी सबसे बड़ी जनसंख्या के साथ, भारत विविध समूहों का आवास है, जिनमें भिन्नता है। इस तरह की विविधताएं भाषाओं और बोलियों में, रीति–रिवाजों और सामाजिक प्रथाओं आदि में हो सकती हैं। देश की भौगोलिक विशेषताओं ने भी इस विविधता में योगदान दिया है। समय के साथ, ये समूह देश के विभिन्न हिस्सों में बस गए और खुद को विशिष्ट बना लिया। यहां तक कि एक परिभाषित भौगोलिक क्षेत्र के भीतर भी अनेक बार विभिन्न सांस्कृतिक और सामाजिक समूह मिल सकते हैं। उनके आर्थिक और सामाजिक विकास भी विविध रहे हैं। देश की स्वतन्त्रता के समय, सामाजिक और आर्थिक रूप से पिछड़े समूहों के विकास ने ध्यान आकर्षित किया और

भारत के संविधान ने उनके सामाजिक–आर्थिक विकास के लिए विशेष प्रावध ाान किए।

जनगणना के दस्तावेज

स्वतन्त्रता से बहुत पहले, भारत के लोगों के किए गए वर्गीकरण ने सरकार के लिए समस्याएं खड़ी की हैं, विशेष रूप से दशकीय जनगणना के लिए, जो ब्रिटिश प्रशासकों द्वारा शुरू की गई थी, क्योंकि "सभ्यता के सभी चरणों में लोग भारत में पाए जाते हैं"।[42] 1872 की जनगणना हाउस रजिस्टर में 'जाति या वर्ग' शब्द का इस्तेमाल किया गया था और 'जाति' को इंगित करने के लिए भी आवश्यक था। उस जनगणना ने उन लोगों के समूहों को सन्दर्भित करने के लिए 'एबोरिजिनल ट्राइब्स' जैसे लेबल का भी इस्तेमाल किया, जो प्रमुख समुदायों से अलग रहते थे और ज्यादातर खानाबदोश या अर्ध–खानाबदोश जीवन शैली का पालन करते थे और जिनकी सांस्कृतिक और धार्मिक प्रथाएं और अनुष्ठान मुख्यधारा से अलग थे। हालाँकि, 1881 की जनगणना में केवल 'जाति' थी, न कि 'वर्ग' और वह भी अगर हिन्दू; अन्य मजहबों के मामले में, लोगों को जनगणना अनुसूची के अनुसार 'सम्प्रदाय' का संकेत देना आवश्यक था। 1891 की जनगणना अनुसूची में जाति और नस्ल के वर्गीकरण और धर्म के लिए सम्प्रदाय का भी इस्तेमाल किया गया।

जनजाति को शुरू में भली भांति से परिभाषित नहीं किया गया था। दास गुप्ता, संयुक्ता (2019) ने कहा है कि औपनिवेशिक प्रशासन ने तीन जनगणनाओं के अनुभव के बाद, बीसवीं शताब्दी की शुरुआत तक, एक जनजाति को "एक सामान्य नाम वाले परिवारों या परिवारों के समूह के रूप में परिभाषित करने का उपक्रम किया, जो किसी नियम के तहत किसी विशिष्ट व्यवसाय को नहीं दर्शाता है; आम तौर पर एक पौराणिक या ऐतिहासिक पूर्वज और कभी–कभी एक जानवर से सामान्य वंश का दावा करते हैं, लेकिन देश के कुछ हिस्सों में रिश्तेदारी की परम्परा के बजाय रक्तपातयुक्त–संघर्ष के दायित्वों के माध्यम से एक साथ संगठित जाता है; आम तौर पर एक ही भाषा बोलते हैं, और देश के एक निश्चित हिस्से पर कब्जा करते, दावा करते या कब्जा करने का दावा करते हैं"।[43] यह आगे कहता है कि "जरूरी नहीं कि एक जनजाति अन्तर्विवाही हो"। ऐसा लगता है कि अंग्रेजों ने जनजातियों, वन–निवासियों, बर्बर और "अर्ध–बर्बर" लोगों को शामिल किया है जो श्वेत नस्लीय श्रेष्ठता के उनके दृष्टिकोण को दर्शाता है।

1901 की जनगणना में, 'जनजाति' शब्द जनगणना अनुसूची के 8वें क्रमांक पर निम्नलिखित वर्गीकरण, "हिन्दुओं और जैनियों की जाति, जनजाति, या दूसरों की जाति" में प्रविश्टि करता है। यह वर्गीकरण 1911 की जनगणना में जारी रहा। 1921, 1931 और 1941 की जनगणना में बिना किसी धार्मिक अर्थ के 'नस्ल, जनजाति या जाति' के वर्गीकरण का इस्तेमाल किया गया था। 1951 की, स्वतन्त्रता के बाद की पहली जनगणना में, 'विशेष समूहों' शब्द का इस्तेमाल किया गया था और असम राज्य के लिए भी, गणक द्वारा लोगों से पूछा जाने वाला एक प्रश्न यह थाः "क्या आप असम के एक मूलनिवासी व्यक्ति हैं?" इस मामले में, मूलनिवासी शब्द असम राज्य के लिए विशिष्ट था और सामान्य तौर पर भारत के लिए नहीं। उस समय, सम्पूर्ण उत्तर पूर्व असम राज्य का हिस्सा था और बड़ी संख्या में जनजातियां थीं जो राज्य के विभिन्न हिस्सों पर हावी थीं और बाद में उत्तर पूर्व राज्यों के पुनर्गठन का आधार बनीं। 1961 से 2011 तक, जनगणना में अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति की स्थिति का संकेत दिया जाना था।[44] इससे पता चलता है कि जनजाति को बसने वालों से स्वदेशीय लोगों को अलग करने के रूप में नहीं माना जाता है। वास्तव में, भारत की जनगणना 2001 के धर्म पर रिपोर्ट में 'मूलनिवासी' शब्द का इस्तेमाल जनजातीय लोगों के विश्वासों और रीति–रिवाजों को सन्दर्भित करने के लिए किया गया था, जो किसी भी प्रमुख धर्म का हिस्सा नहीं थे।

संविधान सभा में बहस

संविधान सभा की बहस (1946–1949) के दौरान जनजातियों का मुद्दा उठा था। श्री जयपाल सिंह[45] तत्कालीन बिहार (अब झारखण्ड) से आदिवासियों के प्रवक्ता थे, जिन्हें विभिन्न रूप से पिछड़ी जनजाति, आदिम जनजाति, आपराधिक जनजाति और जंगली के रूप में जाना जाता था। उन्होंने तर्क दिया कि ये सिन्धु घाटी के लोग थे और अन्य सभी लोग घुसपैठिए हैं।[46] उन्होंने वर्तमान झारखण्ड में रामगढ़ में 53वीं अखिल भारतीय कांग्रेस की आयोजन समिति के अध्यक्ष के रूप में डॉ राजेन्द्र प्रसाद (संविधान सभा के अध्यक्ष) के एक अवलोकन का भी उल्लेख किया कि वहां के लोग भारत के मूल निवासी माने जाते हैं।[47] जयपाल सिंह ने उनके लिए 'आदिबासी' या 'आदिवासी' शब्द को प्राथमिकता दी। उन्होंने विधानसभा अध्यक्ष से कहाः

"मैं चाहता हूं कि आप अपनी अनुवाद समिति को निर्देश जारी करें कि अनुसूचित जनजातियों का अनुवाद आदिवासी (अर्थात् मूल निवासी या मूल लोग) होना चाहिए। आदिवासी शब्द की एक गरिमा है... क्यों इस पुराने अपशब्द बनजाति (वनवासी) का इस्तेमाल किया जा रहा है..."[48]

हालांकि उनके प्रस्ताव को स्वीकार नहीं किया गया। विधानसभा के एक अन्य सदस्य विश्वनाथ दास ने 'आदिवासी' शब्द के इस्तेमाल का इस आधार पर जोरदार विरोध किया कि यह अलगाववादी प्रवृत्तियों को प्रोत्साहित करता है। उन्होंने कहाः

"मैंने श्री ठक्कर बापा से इस दुर्भाग्यपूर्ण अभिव्यक्ति 'आदिवासी' से देश को बचाने की याचना की है। जब तक आप ऐसे शब्दों को मानते हैं तब तक आप मतभेदों को हवा दे रहे होते हैं और इस श्रेणी में आने के इच्छुक अरण्य या जंगली ब्राह्मण जैसे बहुत से लोग पाए जाते हैं। इसलिए मैं निवेदन कर रहा हूं...हमारे देश में अलगाववादी प्रवृत्तियों को प्रोत्साहित करने वाले इन भेदों को कायम न रखा जाए। इसी अभिशाप ने भारत को इतने लम्बे समय तक विभाजित रखा है।"[49]

श्री कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी ने भी 'आदिवासियों' शब्द के इस्तेमाल पर आपत्ति जताई और कहा कि अनुसूचित जनजातियों की समस्याएं एक प्रान्त से दूसरे प्रान्त में भिन्न होती हैं, और "कभी–कभी जिले से जिले में भी।"[50] उन्होंने कहाः

"प्रत्येक प्रान्त की अपनी कई अनुसूचित जनजातियां होती हैं। इनमें से प्रत्येक जनजाति अन्य नृजातीय दृष्टि और साथ ही भाषा की दृष्टि से, सामाजिक और धार्मिक रीति–रिवाजों की दृष्टि से भिन्न है। एक जनजाति और दूसरी जनजाति के बीच कुछ भी समान नहीं है। मेरे अपने प्रान्त में पाँच जनजातियां हैं, जो इस संविधान के अधीन अनुसूचित जनजातियां हैं। डबला, भील, कोली, बरदास और गोण्ड।...वे एक दूसरे से बिल्कुल भिन्न हैं। मुझे पूरा विश्वास है कि कोई भी इस विचार से सहमत नहीं होगा कि बिहार के सन्थाल, बम्बई के गोण्ड या भील और असम के नागा एक ही जातीय, धार्मिक या सामाजिक समूह के सदस्य हैं। वे विभिन्न प्रकार की सभ्यताओं और भिन्न भूगर्भीय काल से सम्बन्धित हैं और यह आवश्यक है कि उन्हें देश के बाकी हिस्सों के स्तर पर लाने के लिए विभिन्न विमर्शों को लागू किया जाए। उन सभी को आदिवासी कहना और उन्हें एक समुदाय के रूप में समूहित करना न केवल अपने आप में एक असत्य होगा, बल्कि स्वयं

जनजातियों के लिए पूरी तरह से विनाशकारी होगा।...आदिवासी इस देश में एक सजग समष्टिगत समुच्चय नहीं हैं...।"

डॉ. बी.आर. अम्बेडकर ने के.एम. मुंशी के इस रुख का समर्थन किया और जब राष्ट्रपति ने उनसे पूछा कि क्या वे कुछ कहना चाहते हैं तब डॉ. अम्बेडकर ने कहाः "श्री मुंशी ने वह सब कुछ कहा है जो कहा जाना चाहिए था और मुझे नहीं लगता कि मैं इसमें कुछ भी उपयोगी जोड़ सकता हूं।"[51]

चर्चा के अन्त में, अनुसूचित जनजातियों को दर्शाने के लिए आदिवासी नामक अभिव्यक्ति को खारिज कर दिया गया और संविधान में आदिवासी शब्द का कहीं भी उपयोग नहीं किया जाता है। संविधान के हिन्दी संस्करण में प्रयुक्त जनजाति का अनुवाद आदिवासी नहीं, जनजाति है।[52]

तथापि, संविधान सभा ने जनजातियों के विकास के मुद्दे पर व्यापक रूप से बहस की। इस पर अध्ययन करने और सिफारिशें करने के लिए इसने एक विशेष उप–समिति का गठन किया था। भारत का संविधान, जिसमें सभी लोगों के लिए उपलब्ध मौलिक अधिकार के रूप में समानता का अधिकार है,[53] सामाजिक और आर्थिक रूप से वंचित समूहों के लिए कुछ विशेष उपचार प्रदान करता है, जिसे वह अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति के रूप में वर्गीकृत करता है। समय–समय पर जारी विशिष्ट आदेशों के अनुसार, वर्तमान में, 28 राज्यों और 8 केन्द्रशासित प्रदेशों में 1,108 जातियां हैं और 22 राज्यों में 705 जनजातियां अनुसूचित जाति (एस.सी.) और अनुसूचित जनजाति (एस.टी.) में आती हैं। सरकार ने उनके विकास के लिए कई सकारात्मक और विकास कार्यक्रम अपनाया है। प्रारम्भ में, संविधान ने अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति के लिए 10 साल के आरक्षण का प्रावधान किया था, जिसके द्वारा विधानसभा द्वारा यह सोचा गया था कि वे अन्य लोगों के समान आर्थिक और सामाजिक विकास के स्तर तक पहुंचेंगे, लेकिन आरक्षण को समय–समय पर बढ़ाया गया है। जैसे–जैसे समय बीतता गया, अन्य पिछड़े वर्ग जैसे अन्य समूह भी सरकारी नौकरियों में आरक्षण आदि के लिए अनुरोध करने लगे, क्योंकि उन्हें लगा कि वे इसमें पिछड़ रहे हैं। सामाजिक और आर्थिक पिछड़ापन ऐसे आरक्षणों का मुख्य मानदण्ड है, न कि जातीयता।

अनुच्छेद 366 (24) और 366 (25) संविधान के मसौदे का अनुच्छेद 303(1), संविधान में क्रमशः एस.सी. और एस.टी. की पारिभाषिक धाराएं हैं। अनुच्छेद 366 (24) कहता है कि अनुसूचित जाति "ऐसी जाति, नस्ल या जनजाति या

ऐसी जातियों, नस्लों या जनजातियों के समूहों के हिस्से हैं जिन्हें अनुच्छेद 341 के तहत अनुसूचित जाति माना जाता है।" इसी तरह, अनुच्छेद 366 (25) कहता है कि एस.टी. "ऐसी जनजाति या आदिवासी समुदाय, या ऐसी जनजातियों या आदिवासी समुदायों के हिस्से या समूह हैं जिन्हें अनुच्छेद 342 के तहत अनुसूचित जनजाति माना जाता है।" अनुच्छेद 341 और 342 ऐसे प्रावधान हैं जो राष्ट्रपति को ऐसी जातियों और जनजातियों को अधि ासूचित करने का अधिकार देते हैं। ऐसी जातियों और जनजातियों के लिए कहीं भी जातीयता को मानदण्ड नहीं बनाया गया है। फिर भी, आदिबासियों के लिए मुखर रूप से तर्क देने वाले सदस्य श्री जयपाल सिंह ने आखिरकार संविधान को अपना पूरा समर्थन दिया। उन्होंने कहाः

> मैं जानता हूं कि आदिवासियों के बारे में ऐसी बहुत सी बातें हैं जो संविधान में नहीं लिखी गई हैं। उदाहरण के लिए, हम अभी तक नहीं जानते हैं, श्रीमान, राष्ट्रपति क्षेत्रों की समय–सारणी के प्रश्न पर किस प्रकार विचार करने जा रहे हैं। उदाहरण के लिए, हम नहीं जानते कि विभिन्न अनुसूचित जनजातियों की किस प्रकार की सूची बनाई जाएगी। हमें अभी तक पता नहीं है कि केन्द्र से समन्वित प्रशासन होगा या नहीं ताकि विभिन्न प्रान्तों में जहां अनुसूचित जनजाति हैं, काम को विनियमित और निर्देशित किया जा सके। इनमें से किसी भी बात का उल्लेख नहीं किया गया है और फिर भी मुझे यह कहने के लिए पूरा विश्वास है कि मैं अनुसूचित जनजातियों के साथ–साथ अन्य लोगों के लिए एक महान भविष्य की आशा कर रहा हूं, क्योंकि यह हमारे ऊपर होगा कि हम अपने देश का भविष्य बनाएं या बिगाड़ें, संविधान बनाएं या बिगाड़ें। श्रीमान्, मैं इसी महान विश्वास के साथ संविधान को अपना निःशर्त समर्थन देता हूं।[54]

अन्य जातियों और जनजातियों से अलग अनुसूचित जाति या अनुसूचित जनजाति के लिए 'मूलनिवासी' की योग्यता भारत के संविधान में बिना किसी आधार के है और यह बाद का घटनाक्रम है। तथापि, सभी भारतीयों के लिए लागू मौलिक अधिकारों के अलावा, संविधान में ही उन्हें कई विशेष अधिकार दिए गए थे। जो उस समय अधिकांश पश्चिमी देशों में उन्हीं जैसे स्थित लोगों के मामले में नहीं था।

संविधान सभा ने पूर्वोत्तर में जनजातियों पर (5, 6 और 7 सितम्बर 1949 को) भी व्यापक रूप से बहस की, लेकिन इन चर्चाओं ने उत्तर पूर्व में आदिवासी क्षेत्रों के प्रशासन (संविधान की छठी अनुसूची) पर ध्यान केन्द्रित किया किन्तु 'आदिवासी' शब्द पर ध्यान नहीं दिया। संविधान ने 'जनजाति' को परिभाषित नहीं किया।[55]

जहां अनुसूचित जाति केवल हिन्दू या बौद्ध या जैन या सिख धर्म से सम्बन्धित है, अनुसूचित जनजाति किसी भी मजहब से सम्बन्धित हो सकती है। अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति दोनों ही भारत के लोगों में सामाजिक और आर्थिक रूप से सबसे पिछड़े हैं। जाति के मानदण्ड सख्त हैं और जन्म से निर्धारित होते हैं। कोई व्यक्ति अपनी जाति नहीं बदल सकता। यही स्थिति आदिवासियों की भी है। कुछ लेखक भारत के सभी जनजातीय लोगों के लिए 'आदिवासी' शब्द का उपयोग इस समझ के आधार पर करते हैं कि वे देश के मूल निवासी थे और अन्य सभी लोग बाद में उपनिवेश–स्थापक थे। यह भारत पर कुछ देशों में विद्यमान वास्तविकताओं का थोपा जाना है और यह किसी भी प्रलेखित ऐतिहासिक तथ्यों पर आधारित नहीं है, क्योंकि विचाराधीन अवधि रिकॉर्ड किए गए इतिहास के शुरू होने से बहुत पहले की थी और सम्भवतः मानवों द्वारा लेखन भी विकसित किए जाने से पहले। उसके लिए, किसी भी समूह या समुदाय के लोगों के लिए यह प्रामाणिक रूप से दावा करना आसान नहीं होगा कि वे वर्तमान भारत के किसी भी महत्वपूर्ण हिस्से में पहले बसने वाले थे, पूरे भारत को तो छोड़ें, और उन्हें एक नए समुदाय के किसी समूह द्वारा बाहर निकाल दिया गया था। किसी भूमि में पहले बसने वाले होने के दावों की स्थापना विश्वसनीय साक्ष्य या तथ्यों पर आधारित होनी चाहिए। प्राचीन इतिहास के क्षेत्र में, पूर्व–ऐतिहासिक काल से सम्बन्धित, इस तरह के साक्ष्य ज्यादातर "जीवाश्म, प्राचीन मानव बस्तियों की पुरातात्विक खुदाई, मनुष्यों द्वारा बनाई गई विभिन्न वस्तुएं, जैसे उपकरण" (टोनी जोसेफ, 2018य पृ.6) हैं। 19वीं सदी के अन्त और 20वीं सदी की शुरुआत में एक ऐसे ही उत्खनन से यह पता चला कि सिन्धु घाटी में 2600 ईसा पूर्व और 1900 ईसा पूर्व के बीच एक सभ्यता थी। उस सभ्यता को विकसित करने वाले लोगों की वास्तविक पहचान अभी भी निर्णायक रूप से स्थापित नहीं हुई है। इतिहासकार इसे (सिन्धु घाटी या हड़प्पा सभ्यता) को एक शहरी सभ्यता मानते हैं, न कि जनजातीय। भारत में जनजातियां उत्तरी अमेरिका या दक्षिण अमेरिका अथवा ऑस्ट्रेलिया की जनजातियों से भिन्न हैं, जिन्हें 15वीं शताब्दी के बाद उनकी भूमि पर विजय प्राप्त करनेवाले लोगों द्वारा उन्हीं की भूमि से खदेड़ दिया गया था।

अनुसूचित जनजातियों की सूची एक राज्य से दूसरे राज्य में भिन्न हो सकती है, अर्थात, एक समुदाय जो एक राज्य में अनुसूचित जनजाति है, दूसरे राज्य में वैसा नहीं हो सकता है। यह अधिसूचित राज्य सूचियों पर

आधारित है जो स्थानीय परिस्थितियों को ध्यान में रखते हैं। दरअसल, अनुसूचित जनजातियों की सूची की अधिसूचना एक सतत प्रक्रिया है। सूचियाँ बनाने में जिन कुछ मानदण्डों का ध्यान रखा जा रहा है, वे निम्नलिखित हैं, जिन्हें लोकुर समिति (1965) द्वारा निर्धारित किया गया है:[56]

- आदिम लक्षणों का संकेत,
- विशिष्ट संस्कृति,
- बड़े पैमाने पर समुदाय के साथ सम्पर्क करने में संकोच,
- भौगोलिक अलगाव, और
- पिछड़ापन।

सभी राज्यों में अनुसूचित जनजातियों के रूप में अधिसूचित समुदायों की कुल संख्या और वर्तमान में केन्द्र शासित प्रदेश 705[57] हैं। ये राज्य–विशिष्ट हैं और इसलिए, लाभ मूल राज्य में उपलब्ध हैं, न कि अन्य राज्यों में।[58]

आजादी के बाद से एस.टी. आबादी का अनुपात बढ़ा है। 1951 की जनगणना के अनुसार यह 5.6 प्रतिशत थी जबकि 2011 में यह 8.6 प्रतिशत थी। 2011 में अनुसूचित जनजातियों की सकल संख्या 10,42,81,034 थी। चार राज्यों और दो केन्द्र शासित प्रदेशों में, वे भारी बहुमत में हैं। सात अन्य राज्यों में उनकी जनसंख्या 20 प्रतिशत से अधिक है जैसा कि नीचे तालिका 1 से देखा जा सकता है:

रइसका मतलब यह है कि कई राज्यों और केन्द्र शासित प्रदेशों के प्रशासन में अनुसूचित जनजातियों का निश्चित रूप से एक निर्णायक प्रभाव है।

जहां प्राचीन काल में अनुसूचित जनजातियों ने मुख्य रूप से पहाड़ी और वन क्षेत्रों में और उसके आसपास अपनी जगह बनी लिए होंगे, आधुनिक समय में वे "मैदानों और जंगल से लेकर पहाड़ियों और दुर्गम क्षेत्रों तक विभिन्न पारिस्थितिक और भू–जलवायु परिस्थितियों में रहते हैं।"[59] ग्रामीण और शहरी दोनों जनक्षेत्रों में वे पाए जाते हैय 2011 की जनगणना के अनुसार, वे ग्रामीण आबादी का 8.13 प्रतिशत और शहरी आबादी का 2.8 प्रतिशत हैं। कुल अनुसूचित जनजाति की आबादी में से 89.97 प्रतिशत ग्रामीण क्षेत्रों में रहते हैं और 10.03 प्रतिशत शहरी क्षेत्रों में रहते हैं।[60] इनमें से कई समुदायों ने भाषा, धर्म, पहनावा आदि में मुख्यधारा की जीवनशैली को अपनाया है।[61]

तालिका 1: प्रचुर संख्या में अनुसूचित जनजाति की आबादी वाले राज्य और केन्द्र शासित प्रदेश

राज्य/केन्द्र शासित प्रदेश	राज्य की जनसंख्या में अनुसूचित जनजातियों की आबादी का प्रतिशत
राज्य	
मिजोरम	94.5
नागालैण्ड	86.5
मेघालय	86.1
अरुणाचल प्रदेश	68.8
मणिपुर	40.9
सिक्किम	33.8
त्रिपुरा	31.8
छत्तीसगढ़	30.6
झारखण्ड	26.2
उड़ीसा	22.8
मध्य प्रदेश	21.1
केन्द्र शासित प्रदेश	
लक्षद्वीप (यू.टी.)	94.8
दादरा और नगर हवेली	52.00

स्रोतः भारत के महापंजीयक का कार्यालय। 2011 की जनगणना।

भारत का उच्चतम न्यायालय

महाराष्ट्र के भील समुदाय की एक महिला से सम्बन्धित एक अपील मामले में, जिसे अन्य समुदायों के चार व्यक्तियों द्वारा पीटा गया, गाली दी गई और नग्न परेड किया गया, लेकिन अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम, 1989 के तहत जिन अभियुक्तों को दोषी पाया गया, बम्बई उच्च न्यायालय की औरंगाबाद शाखा द्वारा निरस्त किया गया

था। माननीय उच्चतम न्यायालय, जो दिन–दहाड़े गाँव की सड़क पर एक आदिवासी महिला के शर्मनाक नग्न परेड पर स्तब्ध और आक्रोष से भरा था, ने एक विचार रखा है। उच्चतम न्यायालय के उक्त विचार के अनुसार भारत आप्रवासियों की भूमि है, जिसमें 92 प्रतिशत से अधिक लोग आप्रवासी हैं और पूर्व–द्रविड़ भारत के मूल निवासी हैं। इस थीसिस के अनुसार, "भारत मोटे तौर पर उत्तरी अमेरिका जैसे आप्रवासियों का देश है।" अदालत ने यह साबित करने के लिए बहुत प्रयत्न किया कि अनुसूचित जनजातियां द्रविड़ों से पहले यहां थीं। यह दक्षिणी भारत की जातियों और जनजातियों (1909) के लेखक थर्स्टन के अनुमोदन से उद्धृत करता है कि "पूर्व–द्रविड़ियन जनजातियों को ही, न कि बाद के और अधिक सुसंस्कृत द्रविड़ों को, जिन्हें आदिम मौजूदा जाति के रूप में माना जाना चाहिए (द मद्रास प्रेसिडेन्सी, पृष्ठ 124–5)।"[62] अदालत ने उत्तर भारत में ऑस्ट्रिक परिवार से सम्बन्धित मुण्डा भाषाओं के अस्तित्व के आधार पर निष्कर्ष निकाला है कि "अब उपलब्ध साक्ष्य के अनुसार, ... ऑस्ट्रिक तत्व सबसे पुराना है और एक ओर द्रविड़ और भारोपीय की क्रमिक लहरों द्वारा, और दूसरी ओर तिब्बती–चीनी द्वारा इसे विभिन्न क्षेत्रों में प्रसारित किया गया है।" यह विचार स्वयं के इस आधार पर आधारित प्रतीत होता है कि भूमि में पहले आगन्तुकों को छोड़कर अन्य सभी अप्रवासी हैं, उनके प्रवेश की अवधि के बावजूद। अदालत का निर्देश भीलों के सामाजिक और आर्थिक विकास के लिए लाभ पहुंचाना था, वे सामाजिक और आर्थिक रूप से पिछड़े थे और बाद के आव्रजकों द्वारा विकास की प्रगति में उन्हें बाहर कर दिया गया था। अदालत ने भारत के जनजातियों के साथ हुए अन्याय को उजागर करने के लिए कड़े शब्दों का इस्तेमाल किया, जो हमारे देश के इतिहास का एक शर्मनाक अध्याय है और अब उनके साथ हुए ऐतिहासिक अन्याय को दूर करने का समय आ गया है।[63]

जहां 2011 के उपरोक्त मामले में अदालत जनजातीय लोगों के भारत के मूलनिवासी लोग होने के बारे में सकारात्मक थी, महामहिम श्री वाई.के. सभरवाल जो भारत के तत्कालीन मुख्य न्यायाधीश थे, ने 8 जून 2006 को टोरण्टो में सम्पन्न 72वें अन्तर्राष्ट्रीय विधि संघ (आई.एल.ए.) के द्विवार्षिक सम्मेलन में 'मूलनिवासियों के अधिकार' पर एक सत्र को सम्बोधित करते हुए 'मूलनिवासी' शब्द को लेकर कहा था कि भारत में अभी भी इस बात पर बहस हो रही है कि कुछ समूहों को स्वदेशीय के रूप में मान्यता देने में कई कठिनाइयाँ हैं, और यह भी कि भारत की सामान्य धारणा के अनुसार

'मूलनिवासी' शब्द भारत में एक भ्रान्त संज्ञा है।[64] सत्र के विषय 'अधिकार' का जिक्र करते हुए 'मूलनिवासी', उन्होंने कहा कि मूलनिवासियों के अधिकारों की रक्षा में भारतीय अनुभव दुनिया के अन्य हिस्सों में अभ्यास में उतारने लायक है। श्री सभरवाल ने बताया कि मूलनिवासियों से सम्बन्धित अन्तर्राष्ट्रीय कानून को समाधान खोजने के सन्दर्भ में सार्थक रूप से तभी सम्बोधित किया जा सकता है जब भारत जैसे देशों के मौजूदा कानूनी ढांचे को मॉडल के रूप में अध्ययन के लिए लिया जाए।[65]

स्थानीय संवाद

जहां भारत ने संयुक्त राष्ट्र में 'मूलनिवासी' नामकरण के मुद्दे पर एक सूक्ष्म रुख अपनाया था, हाल ही में आधिकारिक दस्तावेजों में 'मूल' शब्द का उपयोग करने की प्रवृत्ति बढ़ गई है। "अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति आयोग में, उसकी 1961 की रिपोर्ट में कहा गया है कि अनुसूचित जनजातियों को अन्तर्राष्ट्रीय कानून के तहत मूलनिवासियों के रूप में जाना जाता है।"[66]

लोकसभा की तत्कालीन अध्यक्षा सुश्री मीरा कुमार ने 9 अगस्त 2012 को अन्तर्राष्ट्रीय मूलनिवासी दिवस के अवसर पर बोलते हुए सदन को बताया कि देश में मूलनिवासियों को जनजातीय कहा जाता है (फैजी और नायर, 2017)। गृह मन्त्रालय ने 27 सितम्बर 2018 के एक कार्यालयी आदेश में इस शब्द का इस्तेमाल किया, जिसने "त्रिपुरा राज्य में स्वदेशीय आबादी के सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक और भाषाई मुद्दों" को परखने के लिए एक उच्चस्तरीय समिति का गठन किया।[67] इस मामले में, सन्दर्भ उन लोगों के बीच एक विभाजक रेखा रही है जो आजादी से पहले त्रिपुरा में रह रहे थे और जो देश के विभाजन के समय और बाद में वर्तमान बांग्लादेश से त्रिपुरा चले आए थे।

नागरिकता (संशोधन) विधेयक 2019 के उद्देश्यों और कारणों के विवरण में, 'मूलनिवासी' शब्द का प्रयोग इस सन्दर्भ में किया गया है कि "यह विधेयक उत्तर पूर्वी राज्यों की मूल आबादी को दी गई संवैधानिक गारण्टी की रक्षा करना चाहता है। संविधान की छठी अनुसूची और बंगाल ईस्टर्न फ्रण्टियर रेगुलेशन, 1873"[68] की "इनर लाइन" प्रणाली के अन्तर्गत आने वाले क्षेत्रों को दी गई सांविधिक सुरक्षा, यद्यपि विधेयक के सक्रिय भाग या अधिनियम के पाठ है, ऐसा कोई सन्दर्भयुक्त प्रावधान नहीं है। संविधान की छठी अनुसूची में

असम, मेघालय, त्रिपुरा और मिजोरम राज्यों में जनजातीय क्षेत्रों के प्रशासन के प्रावधान शामिल हैं। यह 'स्वदेशीय' शब्द का प्रयोग नहीं करता है।

फिर भी, अन्य विधानों ने मूलनिवासी शब्द का उपयोग नहीं किया है। अनुसूचित जनजाति और अन्य पारम्परिक वन निवासी (वन अधिकारों की मान्यता) अधिनियम, 2006 (वन अधिकार अधिनियम), जो वनवासियों के कार्यकाल और पहुंच के अधिकारों की लम्बे समय से चली आ रही असुरक्षा को दूर करने की दिशा में एक बड़ा कदम था, में कहीं भी अनुसूचित जनजातियों का 'मूल' के रूप में उल्लेख नहीं है। इसने एक नई श्रेणी, वन–निवास अनुसूचित जनजातियों को निर्दिष्ट किया और इसे "अनुसूचित जनजातियों के सदस्य या समुदाय के रूप में परिभाषित किया जो मुख्य रूप जंगलों में निवास करते हैं और जो आजीविका की वास्तविक जरूरतों के लिए जंगलों या वन भूमि पर निर्भर हैं और इसमें अनुसूचित जनजाति के चरवाहे समुदाय शामिल हैं।"[69]

> भारतीय मानव विज्ञान सर्वेक्षण के पूर्व महानिदेशक के.एस. सिंह, जिन्होंने पीपुल ऑफ इण्डिया परियोजना का नेतृत्व किया था, का विचार था कि जनजातीय और गैर–जनजातीय विभाजन हाल ही का है। उन्होंने एक साक्षात्कार (1996) में कहा, "आदिवासी आन्दोलनों, प्रथागत कानूनों और जनजातीय अर्थव्यवस्था के अखिल भारतीय सर्वेक्षण मेरे द्वारा आयोजित किए गए थे। इन सर्वेक्षण ाों से यह स्पष्ट था कि जनजाति और गैर–जनजाति के बीच का अन्तर हाल ही में किया गया था और मुख्य रूप से शैक्षिक था। जनजातीय और गैर– जनजातीय एक–दूसरे के साथ इतने घनिष्ठ रूप से जुड़े हुए हैं कि जनजातीयों को अलग करना मुश्किल है।"[70]

साथ ही, वे इस बात को भी स्वीकार करते हैं कि 'जनजातियों' नामक शब्द से इस समुदाय की अभिव्यक्ति को दूर करना सम्भव नहीं है क्योंकि देश में दो शताब्दियों से अधिक समय से इस शब्द का उपयोग किया जा रहा है।

अनुसूचित जनजातियों की वर्तमान प्रशासनिक स्थिति

संविधान में अनुसूचित जनजातियों के लिए विस्तृत प्रावधान हैं।[71] ये प्रावधान अनुसूचित जनजाति लोगों को संसद, विधायिकाओं और सरकारी सेवाओं में पर्याप्त प्रतिनिधित्व करने में सक्षम बनाते हैं। ये प्रावधान संविध ाान की पांचवीं और छठी अनुसूचियों के साथ यह सुनिश्चित करते हैं कि विभिन्न जनजातीय समुदाय जनजातियों के रूप में अपनी विशिष्ट संस्कृति को बनाए रखने में सक्षम हों और छठी अनुसूची[72] पांचवी अनुसूची[73] के तहत

सलाहकार परिषदों के अन्तर्गत स्वायत्त जिला और क्षेत्रीय परिषदों के तन्त्र के माध्यम से उन्हें अपने क्षेत्रों के प्रशासन में स्वायत्तता प्राप्त है। इन परिषदों के पास व्यापक विधायी, कार्यकारी और न्यायिक अधिकार हैं। पांचवीं अनुसूची आसाम, मेघालय, त्रिपुरा और मिजोरम के अलावा अन्य राज्यों में अनुसूचित क्षेत्रों और अनुसूचित जनजातियों के प्रशासन से सम्बन्धित है और अनुसूची छह इन चार राज्यों में जनजातीय क्षेत्रों से सम्बन्धित है। वन अधिकार अधिनियम के अधिनियमन को अधिकांश लोगों द्वारा अनुसूचित जनजाति समुदाय के सशक्तिकरण की दिशा में एक बड़ा कदम बताया गया है[74]। यह अधिनियम अनुसूचित जनजातियों और वन में निवास कर रहे अन्य पारम्परिक वन–वासियों के वनभूमि में वन अधिकारों और कब्जे को मान्यता देता है और निहित करता है, जो पीढ़ियों से ऐसे वनों में निवास कर रहे हैं, लेकिन जिनके अधिकारों को दर्ज नहीं किया जा सका है। यह इस प्रकार निहित वन अधिकारों और वन भूमि के सम्बन्ध में इस तरह की मान्यता और निहित करने के लिए आवश्यक साक्ष्य की प्रकृति को लिपिबद्ध करने के लिए एक रूपरेखा प्रदान करता है। अपनी प्रस्तावना में, अधिनियम यह भी एक स्पष्ट वक्तव्य देता है किः

"औपनिवेशिक काल के दौरान और साथ ही स्वतन्त्र भारत में पैतृक भूमि और उनके आवास पर वन अधिकारों को पर्याप्त रूप से मान्यता नहीं दी गई थी, जिसके परिणामस्वरूप वन में रहने वाली अनुसूचित जनजातियों और अन्य पारम्परिक वनवासियों के साथ ऐतिहासिक अन्याय हुआ था, जो वन पारिस्थितिकी तन्त्र की उत्तरजीविता और स्थिरता से अभिन्न हैं।"[75]

अनुसूचित जनजाति के बंधुआ श्रम उन्मूलन अधिनियम, 1976 और अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम, 1989 जैसे अनुसूचित जनजातियों के अधिकारों की रक्षा करने वाले कानून पहले भी थे। नया कानून जैविक विविधता के संरक्षण और सतत विकास को लेकर भारत की प्रतिबद्धताओं के समग्र हित में है। जैविक विविधता के संरक्षण और वन उत्पादों के संग्रह में स्थायी प्रथाओं को सुनिश्चित करने में वनों पर निर्भर जनजातीय समुदायों की सकारात्मक रुचि है।

अनुसूचित जनजातियों के एकीकृत सामाजिक–आर्थिक विकास की दिशा में अधिक अभिकेन्द्रित दृष्टिकोण प्रदान करने के लिए 1999 में जनजातीय मामलों के एक अलग मन्त्रालय की स्थापना की गई थी। भारत सरकार ने संविधान के अनुच्छेद 338ए के तहत राष्ट्रीय अनुसूचित जनजाति आयोग का

भी गठन किया है। आयोग अन्य बातों के साथ–साथ, संविधान और किसी अन्य कानून के तहत अनुसूचित जनजातियों के लिए प्रदान किए गए सुरक्षा उपायों से सम्बन्धित सभी मामलों की जांच और निगरानी करने की शक्ति रखता है। आयोग का अध्यक्ष केन्द्रीय कैबिनेट मन्त्री के स्तर का होता है। पहला आयोग मार्च 2004 में स्थापित किया गया था।

उपयुक्त शब्दः मूलनिवासी, आदिम या जनजातीय?

अकादमिक साहित्य और आधिकारिक अभिलेखों में कई शब्द हैं जैसे कि पहले लोग, पहले राष्ट्र, आदिवासी लोग, मूलनिवासी लोग, स्वदेशीयय लोग जो वर्तमान में मूलनिवासी लोगों के अलावा उपयोग में हैं, हालांकि यह वही है जो अन्तर्राष्ट्रीय चर्चाओं में प्रचलन में है। 'मूल' शब्द हालांकि संयुक्त राष्ट्र द्वारा इस्तेमाल किया गया है, लेकिन इसे सार्वभौमिक स्वीकृति नहीं मिली है। 2017 का एक पर्चा कहता है कि कई जनजातीय समूह 'मूलनिवासी' या 'आदिवासी' शब्द की अपेक्षा 'प्रथम राष्ट्र' शब्द को पसन्द करते हैं।[76]। ऑस्ट्रेलिया, कनाडा, संयुक्त राज्य अमेरिका आदि में 'प्रथम राष्ट्र' को अधिक स्वीकार्यता मिली है, हालांकि कुछ का मानना है कि अन्य शब्दों के साथ–साथ यह शब्द भी "जनजातीय समूहों के लिए अप्रिय है, विशेष रूप से जब एक अन्तर्राष्ट्रीय, समग्र और सार्वभौमिक तरीके से उपयोग किया जाता है।"[77] वे यह मानते हैं कि यह शब्द विविध समूहों को समरूप बनाने हेतु प्रयुक्त किया जाता है, जैसा कि औपनिवेशिक मानवविज्ञानियों ने मौलिक रूप से अलग–अलग समूहों को परिभाषित करने के लिए 'मूलनिवासियों' शब्द के साथ किया। ऐसा इसलिए किया गया क्योंकि इन शब्दावलियों में लोगों को समरूप बनाने का प्रभाव इस अर्थ में है कि प्रारम्भिक साम्राज्यवादी नृविज्ञान ने 'अन्य लोगों' को 'मूलनिवासी' के रूप में गढ़ा, जो उपनिवेश कायम करने और बसने वालों से अलग थे। कई विद्वानों का तर्क है कि "दुनिया के जनजातीय समूहों का नाम देने के लिए इस्तेमाल की जाने वाली सामूहिक संज्ञाएं तेजी से समस्याग्रस्त हो गई हैं और अपने मूल में ये शब्द अक्सर अपमानजनक, ऐतिहासिक रूप से गलत और औपनिवेशिक अतीत से दूषित होते हैं जो 'आदिम' लोगों की अपमानजनक धारणा पर आधारित होते हैं आउट पश्चिमी संज्ञानात्मक श्रेष्ठता की धारणा लिए होते हैं" (पीटर्स और मिका, 2017)। फिर भी, कई लोग अभी भी 'मूलनिवासी' शब्द का उपयोग करना पसन्द करते हैं। मूलनिवासियों के अधिकार को बढ़ावा देने,

सुरक्षा और बचाव के लिए समर्पित स्वदेशीय मामलों के लिए अन्तर्राष्ट्रीय कार्य समूह (आई.डबल्यू.जी.आई.ए.), एक वैश्विक मानवाधिकार संगठन है जिसका कोपेनहेगन में मुख्यालय में है, और अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन (आई. एल.ओ.), आदि भी इस शब्द का उपयोग करते हैं। कुछ विद्वान 'मूल और जातीय'[78] शब्द का उपयोग करते हैं। रौक्सैन डनबर–ऑर्टिज ने संयुक्त राज्य अमेरिका के अपने इतिहास को उस भूमि के मूल निवासियों के दृष्टिकोण से "संयुक्त राज्य अमेरिका के मूलनिवासियों का एक इतिहास" (2014) का शीर्षक दिया। वे "मूल", "इण्डियन" आदि शब्दों का परस्पर उपयोग करती है। हालांकि "इण्डियन" शब्द एक अपमानजनक शब्द है, लेखक का कहना है कि उत्तरी अमेरिका में मूलनिवासी "कुल मिलाकर इसे एक कलंक नहीं मानते हैं।"[79] मूल शब्द का उपयोग भारत में फोरम उड़ीसा (आई.पी.एफ.ओ.), झारखण्ड इण्डिजिनस एण्ड ट्राइबल पीपल्स फॉर एक्शन (जे.आई.टी.पी.ए.), जो इण्डिजिनस फोरम (जेड.आई.एफ.), मिजोरम, आदि कई नागरिक समाज संगठनों द्वारा किया जाता है। तथापि, जैसा कि पीटर्स और मीका ने एक सम्पादकीय में देखा, 'मूल' और 'जनजातीय' (और इसके संज्ञेय) शब्दों द्व ारा नामित लोगों को इसे लेकर आपत्ति हुई, "क्योंकि इन शब्दों में लोगों के समरूपीकरण करने का प्रभाव है। यह प्रभाव प्रारम्भिक शाही नृविज्ञान द्वारा स्थापित किया गया, क्योंकि उसने उपनिवेश कायम करने और बसने वालों का विरोध करनेवालों की पहचान 'अन्य लोग' 'स्वदेशीय' के रूप में की" (पीटर्स और मिका, 2017)।

भारत में जनजाति, आदिवासी, वनवासी आदि शब्दों का प्रयोग कई बार एक दूसरे के स्थान पर किया जाता रहा है। माइनॉरिटी राइट्स ग्रुप इण्टरनैशनल का कहना है कि आदिवासी शब्द "भारत के कई मूल लोगों" का सामूहिक नाम है। यह भी समझाया गया कि यह शब्द दो हिन्दी शब्दों से बना है, एक 'आदि' का अर्थ है शुरुआत और 'वासी' जिसका अर्थ है निवासी। शब्द के प्रयोग को लेकर माइनॉरिटी राइट्स ग्रुप इण्टरनैशनल कहता है कि "यह 1930 के दशक में गढ़ा गया था, सम्भवतः भारत के विभिन्न मूलनिवासी लोगों के बीच पहचान की भावना पैदा करने के लिए एक राजनीतिक आन्दोलन का परिणाम था।"[80] लेख में यह स्वीकार किया गया है कि जनजातियां एक समरूप समूह नहीं हैं और "उनके इतिहास के बारे में बहुत कम जाना जाता है।" ऐसा लगता है कि मई 1938 में आदिवासी महासभा के गठन के बाद यह शब्द लोकप्रिय हो गया, जिसके अध्यक्ष श्री

जयपाल सिंह थे और जिसका उद्देश्य छोटानागपुर और सन्थाल परगना का एक अलग प्रान्त बनाना था, जो उस समय बिहार का हिस्सा बन गया था।[81] दासगुप्ता और संगीता (2018) कहते हैं कि 'आदिवासी' शब्द राजनीतिक रूप से मुखर शब्द है और यह "1938 में पहली बार राजनीतिक सन्दर्भ में उपयोग में आया।"[82]

डॉ. अम्बेडकर ने जनजातियों के लिए 'आदिम लोग' शब्द का उपयोग करना पसन्द किया। उन्होंने अपनी पुस्तक एनिहिलेशन ऑफ कास्ट (1936) में, जो लाहौर के जात–पात–तोड़क मण्डल के वार्षिक सम्मेलन के लिए तैयार किया गया एक भाषण था, लेकिन वितरित नहीं किया गया, कहा है कि "ये आदिम लोग एक ऐसी भूमि में, जिसकी सभ्यता हजारों साल पुरानी है, अपनी आदिम असभ्य अवस्था में बने रहे हैं।"[83] वे जनजातियों की ज्यादा सराहना नहीं करते थे और 6 मई 1945 को बम्बई में आयोजित अखिल भारतीय अनुसूचित जाति संघ को सम्बोधित करते हुए उन्होंने कहा कि "आदिम जनजातियों ने अपने राजनीतिक अवसरों का सर्वोत्तम उपयोग करने के लिए अभी तक किसी भी राजनीतिक भावना का विकास नहीं किया है और वे आसानी से किसी बहुमत या अल्पसंख्यक के हाथों में केवल उपकरण बनकर रह सकते हैं, और इस तरह स्वयं का कुछ भी भला किए बिना सन्तुलन को बिगाड़ सकते हैं।"[84] यह इस बात के विपरीत है जो 19 दिसम्बर 1946 को संविधान सभा में जयपाल सिंह ने तर्क देते समय कहा। जयपाल सिंह ने यह कहा था कि आदिम जातियां अपने साथ प्रत्येक अन्य भारतीय की तरह व्यवहार चाहते हैं और कोई विशेष संरक्षण नहीं चाहते हैं। यह एक ऐसा रुख था जो उच्च राजनीतिक भावना को दर्शाता है।[85] डॉ. अम्बेडकर के विचार अनुसूचित जातियों के लिए उनकी चिन्ताओं से प्रभावित रहे हो सकते हैं, जिनमें से कई 'अस्पृश्य' (अछूत) थे। इस कुप्रथा के खिलाफ उस समय पूरे भारत में कई आन्दोलन हो रहे थे, जबकि इसके विपरीत, अनुसूचित जनजातियों के मामले में ऐसा नहीं था। वह पहले भी और बाद में संविधान सभा में भी अनुसूचित जातियों के मुद्दे पर अनुसूचित जातियों से अलग दृष्टिकोण के लिए दलील प्रस्तुत कर रहे थे। तथापि, मुद्दे की बात यह है कि डॉ. अम्बेडकर भी 'आदिवासी' शब्द का प्रयोग नहीं कर रहे थे।

'आदिवासी' शब्द वर्तमान में भारत और विदेशों में आम चर्चाओं और मीडिया रिपोर्टों में भारत के सभी जनजातीय लोगों के लिए इस्तेमाल किया जाता है, चाहे वह अनुसूचित जनजाति की सूची में शामिल हो या नहीं।

वास्तव में, आदिवासी लोगों का एक समूह नहीं है, बल्कि विभिन्न जनजातियों से सम्बन्धित है, विभिन्न राज्यों और स्थानों में बसे हुए हैं, जिनमें शहर भी शामिल हैं, विभिन्न धर्मों के अनुयायी, विभिन्न भाषा परिवारों से सम्बन्धित विभिन्न भाषाएं बोलते हैं और उनकी विभिन्न सांस्कृतिक और सामाजिक प्रथाएं हैं। साथ ही, शिक्षाविदों और नागरिक समाज संगठनों के बीच 'आदिवासी' शब्द के उपयोग के बारे में भी कोई सहमति नहीं है, जिसका शाब्दिक संस्कृत में अर्थ है, मूल या प्रारम्भिक बसने वाले (आदि=प्रथम और वासी=निवासी)। घुर्ये इस शब्द को लेकर सहज नहीं थे और उन्होंने "तथाकथित आदिम लोग" (क्साक्सा, 1999) वाक्यांश का इस्तेमाल किया। 2016 के एक पर्चे में प्रथम बनर्जी ने एक पद–टिप्पणी में स्पष्ट किया कि वे दोनों शब्दों का उपयोग करते हैं क्योंकि उत्तर–पूर्व में स्वदेशीय समूह खुद को आदिवासियों के बजाय जनजाति कहना पसन्द करते हैं क्योंकि यह (आदिवासी) मध्य भारत के आप्रवासियों के लिए लागू शब्द है।[86] अर्थशास्त्र में ("कम से कम एक हजार साल पहले लिखा गया राज्य व्यवस्था पर एक अग्रणी रचना"[87]) कौटिल्य जनजातियों और आदिवासी लोगों का सन्दर्भ देते हैं। वे सीमावर्ती जनजातियों (सीमान्त जातियों) की बात करते हैं ("सीमावर्ती क्षेत्र या तो पहाड़ी थे या जंगलों में जनजातियों का निवास था जो पूरी तरह से राजा के नियन्त्रण में नहीं थे"[88]), और जनजातियों के स्वतन्त्र होने ("अनसुनी जंगल जनजातियाँ अपने क्षेत्र में रहती हैं", अधिक संख्या में हैं, बहादुर हैं, दिन के उजाले में लड़ते हैं और, देशों को अधिकृत करने और नष्ट करने की अपनी क्षमता के साथ, राजाओं की भांति व्यवहार करते हैं")[89], किन्तु 'आदिवासी' शब्द का उपयोग नहीं करते हैं।

हालांकि जनजातियां ज्यादातर पहाड़ी और वन क्षेत्रों पर बसे हैं, 14वीं से 18वीं शताब्दी के दौरान मध्य भारत में कुछ जनजातियों ने गोण्ड राज्य जैसे अपने राज्य भी बनाए। वास्तव में, उन्होंने लगभग चार शताब्दियों तक मध्य भारत के पूरे पहाड़ी क्षेत्र पर शासन किया, जिसमें मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़ और महाराष्ट्र के विदर्भ के कुछ हिस्से शामिल हैं। अन्तर्विवाह सहित, उस समय के हिन्दू और मुस्लिम शाही परिवारों की प्रमुख संस्कृतियों के साथ इस जनजाति का महत्वपूर्ण लेन–देन था। कोरेती (2016) मध्य भारत के विभिन्न गोण्ड राज्यों के कई वैभवशाली राजाओं की बात करते हैं। उनकी मातृभाषा गोण्डी थी, जो इण्डो–द्रविड़ परिवार से सम्बन्धित है, और मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र, छत्तीसगढ़, आन्ध्र प्रदेश, तेलंगाना और ओडिशा के छह राज्यों में

बोली जाती रही।[90] प्राचीन काल में कम्बोज नाम के जनजातीय राज्य थे, जिनका उल्लेख महाभारत में है। आसाम का अहोम साम्राज्य (1228–1838) एक अन्य उदाहरण है।[91] गोण्डों और अहोमों के विपरीत, ऐसे जनजातीय राजा हैं जिन्होंने केवल वन क्षेत्रों में अपनी प्रजा पर शासन किया, जैसे केरल के मन्नान, जो अपनी जनश्रुतियों में दावा करते हैं कि वे 700 वर्ष पुराने हैं और पाण्ड्य राजा चिरायवर्मन के वंशज हैं जिन्हें एक चोल राजा ने पराभूत किया था, और वे सात सदियों पहले केरल के इडुक्की जिले में आ बसे।[92]

1998 के एक पर्चे[93] में आन्द्रे बेटिल ने भारत के कुछ समूहों के लिए 'जनजातियों' के शब्द के क्रमविकास का वर्णन किया है। वे अतीत में विभिन्न शब्दों के उपयोग के बारे में बतलाते है जैसे 'आदिम' जो द्वितीय विश्व युद्ध के बाद प्रचालन से बाहर हो गया, 'वंचित', 'पहाड़ी और वन जनजाति', 'आदिम जनजाति' ('आदिवासी') और फिर बताते हैं कि 'अनुसूचित जनजाति' शब्द को भारत सरकार ने आजादी से पहले ही अपनाया था। वह बताते हैं कि भारत में "जनजातीय और गैर–जनजातीय आबादी दोनों ने अनधिकार–ग्रहण, नस्लीय मिश्रण और आप्रवासन के माध्यम से अनेक परिवर्तनों से गुजरे हैं" और 19वीं शताब्दी के मध्य तक आज की जनजातियां बड़े पैमाने पर "आर्थिक, राजनीतिक और सामाजिक रूप से या तो अधीन की गईं हैं या हाशिए पर धकेल दी गईं हैं।" लेकिन यह ऑस्ट्रेलिया या संयुक्त राज्य अमेरिका में जिस प्रकार बलात् अनधिकार–ग्रहण हुआ, उससे अलग है और दुनिया के एक विशेष हिस्से में एक विशेष अनुभव के प्रत्युत्तर में उभरे 'मूल' शब्द के उपयोग की उपयुक्तता भारतीय सन्दर्भ में विवादास्पद है।

भारतीय सन्दर्भ में, 'मूल' की अवधारणा को एक महाद्वीपीय दृष्टिकोण से जाँचने की आवश्यकता है, न कि राष्ट्र–राज्य के दृष्टिकोण से। राष्ट्र–राज्य में, आम तौर पर एक प्रमुख समूह होता है जिसकी भाषा और संस्कृति राष्ट्र या राज्य के अस्तित्व का आधार बनती है। भारत के मामले में, दुनिया की दूसरी सबसे बड़ी आबादी के साथ, जो दुनिया की आबादी का 16 प्रतिशत है, 2.4 प्रतिशत से अधिक भूमि क्षेत्र के साथ[94], इसके संविधान में ही 22 आधिकारिक भाषाओं को मान्यता दी गई है।[95] ये भाषाएँ चार प्रमुख भाषा समूहों, अर्थात इण्डो–यूरोपियन, द्रविड़ियन, ऑस्ट्रो–एशियाटिक और चीनी–तिब्बती, से सम्बन्धित हैं। विभिन्न लिपियाँ हैं, लगभग सभी मूल रूप से विकसित हुई हैं। विभिन्न राज्यों में प्रमुख भाषाएं अलग–अलग हैं, केरल के एक छोर पर 96 प्रतिशत से अधिक मलयालम भाषा बोलने वाले हैं और दूसरे छोर पर

नागालैण्ड में केवल 14 प्रतिशत एओ बोलने वाले हैं। देश में अकेले 103 विदेशी मातृभाषाओं सहित 1,652 मातृभाषाएं हैं।[96]

यह सैकड़ों अलग–अलग समुदाय हैं जो एक देश बनाने के लिए एक साथ आए हैं, न कि एक ही भाषा बोलने वाला एक समुदाय। इसमें जनजाति और जाति समूह सभी बराबर के भागीदार हैं। उन सभी की जड़ें इस देश में 2,000 से अधिक वर्षों से पुरानी हैं। उस दृष्टि से भारत के सभी लोग 'मूल' हैं और उनमें भेद करना उचित नहीं है।

अकादमिक और सक्रिय साहित्य में, कई {परमार (2018 और 2019), पिल्लई (2014)} लोग रहे हैं जो भारत के जनजातीय लोगों को सन्दर्भित करने के लिए 'मूल' शब्द का समर्थन करते हैं। वे अपने तर्क को ज्यादातर इस कथन पर आधारित करते हैं कि जनजातीय लोग "भारत के प्रारम्भिक निवासी हैं।"[97] वे संविधान सभा में जयपाल सिंह के बयानों और कैलास मामले (2011) में उच्चतम न्यायालय के फैसले पर निर्भर रहते हैं। उच्चतम न्यायालय ने इस बात का जायजा लिया था कि जनजातीय लोग शायद भारत के मूल निवासियों के वंशज हैं, और यह भी देखा कि अत्यधिक गरीबी, अशिक्षा, बेरोजगारी, बीमारी और भूमिहीनता की उनकी स्थिति ऐतिहासिक अन्याय का परिणाम है। ये ऐसी वंचनाएं हैं जिन्हें निश्चित रूप से प्राथमिकता पर दूर किए जाने की आवश्यकता है। अदालत ने कहा कि "ऐतिहासिक रूप से वंचित समूहों को विशेष सुरक्षा और सहायता दी जानी चाहिए ताकि उन्हें उनकी गरीबी और निम्न सामाजिक स्थिति से ऊपर उठाया जा सके।"[98]

जनजातियों के सदस्यों में एक अन्तर्निहित डर है कि जनजातीय लोगों को मूलनिवासी नहीं मानने से उन्हें मूलनिवासियों के मानवाधिकारों से वंचित किया जा सकता है, जो उनका अधिकार है। स्वदेशीय समुदायों के मानवाधिकारों की रक्षा के लिए अन्तर्राष्ट्रीय आन्दोलन का हिस्सा होने से स्वाभाविक रूप से उनके प्रयासों को बढ़ावा मिलता है। कार्लसन का कहना है कि भारत में कई जनजातीय संगठन अपने अधिकारों को स्थापित करने के लिए अपने संघर्ष को इस दावे पर आधारित करते हैं कि वे देश के मूल लोग हैं और मूलनिवासियों के अधिकारों को मजबूत करने में लगे राष्ट्रीय, क्षेत्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय नेटवर्कों में भाग लेते हैं (कार्लसन, 2008)। 'आदिवासी' या 'मूलनिवासी' के पक्ष में कई कार्यकर्ता जनजातीय लोगों को भूमि अधिकारों से वंचित किए जाने के बारे में चिन्तित हैं। वे विकास परियोजनाओं के दौरान

अलग की गई जनजातीय भूमि की बहाली नहीं होने के खिलाफ आवाज उठाते हैं। उत्तर पूर्व में, जनजातीय समुदाय कोयले, जंगलों और तेल पर अपने स्वामित्व की मान्यता की मांग करते हैं (आई.डब्ल्यू.जी.आई.ए., 2021)। वे हमेशा अपनी भूमि और संस्कृति पर अपने अधिकारों के बारे में चिन्तित रहते थे, जैसा कि साइमन आयोग (1928) ने कहाः "वे आत्मनिर्णय के लिए नहीं, बल्कि भूमि की सुरक्षा के लिए, आजीविका के पारम्परिक तरीकों की खोज में स्वतन्त्रता और उनके पुश्तैनी रीति–रिवाजों के समुचित व्यवहार की मांग करते हैं।"[99] ये चिन्ताएँ अभी भी बनी हुई हैं और 'मूलनिवासी' नामकरण उन्हें अन्तर्राष्ट्रीय उपकरणों पर अपनी मांगों को आधारित करने में मदद करता है। उदाहरण के लिए, रॉय बर्मन कहते हैं कि "जनजातियों के लिए आदिम या स्वदेशीय दर्जे का दावा करने के प्रमुख कारकों में से एक है उन्हें क्षेत्रीय, भूमि अधिकार और प्राकृतिक संसाधनों पर नियन्त्रण हासिल करने में सक्षम बनाना है" (रॉय बर्मन, 2009)। उस सीमा तक, इस शब्द का प्रयोग एक राजनीतिक कथन है।

भारत हाल की शताब्दियों में बड़े पैमाने पर लोगों की आमद और सामूहिक संहार की औपनिवेशिक बनावट में आसानी से फिट नहीं बैठता है। भारत में सुविधा सम्पन्न और वंचित दोनों तरह के समूह हैं और ब्रिटिश भारत के सभी लोग, और परोक्ष रूप से रियासतों के लोग, 1947 तक औपनिवेशिक अधीनता में थे, चाहे उनका मानवशास्त्रीय, सामाजिक या आर्थिक वर्गीकरण कुछ भी हो। लेकिन, जैसा कि बेटील कहते हैं, "बौद्धिक विषय आज इतने व्यवस्थित हैं कि दुनिया के किसी विशेष हिस्से में किसी विशेष अनुभव के जवाब में उभरने वाली अवधारणाएं और शर्तें इसके अन्य हिस्सों तक पहुँचते हैं जहां वे अपने आप को संग्रहीत कर अपना जीवन प्राप्त करते हैं।"[100] यह बौद्धिक भ्रम पैदा करता है और कुछ समूहों के राजनीतिक या आर्थिक एजेण्डे के लिए इस्तेमाल किया जाता है। एस. दासगुप्त (2018) स्पष्ट रूप से कहती हैं कि "मूल निवासियों" के रूप में आदिवासी का शाब्दिक अर्थ इन समुदायों को "वैश्विक क्षेत्र में मूलनिवासियों के रूप में, रणनीतिक और राजनीतिक रूप से खुद को स्थापित करने में सक्षम बनाता है।"[101]

अनुसूचित जनजातियों के अलावा अन्य समुदाय भी मूलनिवासियों की स्थिति का दावा करते हैं। इनमें दलित, मणिपुर के वैष्णव मैतेई और असम के हिन्दू जाति जैसे कई अन्य समूह शामिल हैं (रॉय बर्मनरू 2009)।

भारत में वास्तविक रूप से सबसे पहले बसने वालों की पहचान करना एक मुश्किल काम है, लेकिन यह एक सच्चाई है कि उत्तर–पूर्व में नागा जैसी कई जनजातियाँ बसने वालों में बहुत प्राचीन नहीं हैं। माना जाता है कि वे पहली सहस्राब्दी ईसा पूर्व के मध्य में भारत आए थे। मिजो लोग भारत में 16वीं शताब्दी में ही आए हैं (क्साक्सा, 1999)। साथ ही, जनजातियों के साथ–साथ अन्य समुदाय भारत के भीतर भी अतीत में कई बार अपने बसे हुए स्थानों को छोड़कर चले गए हैं। भारत में किसी भी समूह के लिए ऐतिहासिक जातीयता का प्रयोग एक भ्रमित करने वाली कवायद है; क्या भारतीय उपमहाद्वीप के पूरे क्षेत्र को एक माना जाना चाहिए? क्या विशेष क्षेत्रों की पहचान की जानी चाहिए? किसी स्थान पर ठहरने की अवधि कितनी होनी चाहिए, और जब लोग स्वतन्त्र रूप से आपस में मेलजोल करते रहे हैं तो कितनी सांस्कृतिक शुद्धता सुनिश्चित की जानी चाहिए?

ऐसा लगता है जो लोग 'मूल' शब्द के पक्ष में और भारत के जनजातीय समुदायों को मूलनिवासियों के रूप में मान्यता देने के लिए तर्क देते हैं,[102] उनकी मुख्य चिन्ता है कि संयुक्त राष्ट्र संघ की घोषणा में निहित मानवाधिकारों पर आधारित सिद्धान्तों और दायित्वों को इन लोगों तक बढ़ाया जाना चाहिए। उदाहरण के लिए, 2016[103] में संयुक्त राष्ट्र मानवाधिकार परिषद के लिए अपनी टिप्पणियों में कल्चरल सर्वाइवल उन अधिकारों के उल्लंघन को सन्दर्भित करता है जैसे भूमि और बसने का अधिकार, अवशोषण करनेवाले उद्योगों द्वारा स्वतन्त्र, पूर्व और सूचित सहमति की उपेक्षा, और यातना, शारीरिक शोषण और हत्या। ये लगभग सभी समुदायों पर समान रूप से लागू होते हैं जो परियोजना क्षेत्रों में हो सकते हैं। इसमें कोई दो राय नहीं हैं कि अनुसूचित जनजातियों की आबादी के मानवाधिकारों की रक्षा की जानी चाहिए, लेकिन अन्य समुदायों, विशेष रूप से अनुसूचित जातियों जैसे कमजोर समूहों के मानवाधिकार भी हैं। साथ ही, 'आत्मनिर्णय' का अधिकार जैसी अवधारणाएं समस्याएं उत्पन्न करती हैं। कार्लसन ने संयुक्त राष्ट्र में भारत के रुख के सम्भावित आधारों का जिक्र करते हुए कहा कि "एक जोखिम है कि यह राष्ट्रीय सम्प्रभुता और क्षेत्रीय अखण्डता को कमजोर करेगा" (कार्लसन,1999 पृ. 26)। कुछ समुदायों पर मूल का टैग थोपना, जिन्हें संविधान के तहत सकारात्मक कार्रवाई के लिए विशेष उपचार देने के विशिष्ट उद्देश्य के लिए पहचाना गया था, जटिलताएं पैदा करता है, चाहे ऐतिहासिक सटीकता कुछ भी हो या नहीं। जैसा कि पहले ही उल्लेख किया गया है,

विकास उद्देश्यों के लिए ऐसा विशेष उपचार अनुसूचित जाति जैसे सामाजिक और आर्थिक रूप से वंचित समूह के लिए उपलब्ध है। अनुसूचित जनजातियों को अनुसूचित जातियों के खिलाफ, जो यदि अधिक नहीं तो समान रूप से वंचित हैं, खड़ा करना, अनुचित है।

अनुसूचित जनजातियों के लिए इस्तेमाल किए जा रहे प्रत्येक शब्द की अपनी फायदे और कमियां हैं। आदिवासी शब्द का अर्थ है केवल पहले से निवास करते आए हुए लोग, कुछ हिस्सों में इस्तेमाल के कारण आम भाषण में आपत्तिजनक अर्थ ग्रहण कर बैठा। इसका अर्थ कुछ इस प्रकार समूह के रूप में जाना गया, जो 'सभ्य' नहीं हैं, या बर्बर किस्म के लोग हैं । यह रवैया, निश्चित रूप से इस शब्द या इसके शब्दकोशीय अर्थ पर निर्भर नहीं है लेकिन दूसरों (यानी अन्य प्रभावी लोगों) का जनजातियों के प्रति रवैये पर, यानी उन्हें समाज के अन्य वर्ग कैसे देखते हैं, इस बात पर निर्भर करता है। केम्ब्रिज डिक्शनरी की परिभाषा के अनुसार मूलनिवासी का अर्थ है "उन लोगों से सम्बन्धित है जो मूल रूप से एक जगह पर रहते थे, न कि वे लोग जो वहां कहीं और से चले गए थे"[104]। इस परिभाषा का विस्तार करते हुए, कोई भी दो निष्कर्षों पर पहुंच सकता है। एक, मूलनिवासी लोग वे हैं जो अभी भी वहां हैं जहां होमो सेपियन्स (नृवंश) पहली बार उभरा, ज्ञान की वर्तमान अवस्था के अनुसार जो अफ्रीका में विक्टोरिया झील के आसपास है, और दो, किसी भी भूमि में पहले मानव बसने वाले (जो कि एशिया और अफ्रीका के अधिकांश हिस्सों में बहुत सापेक्ष और समस्याग्रस्त है, क्योंकि वर्तमान राजनीतिक सीमाएँ बहुत प्राचीन नहीं हैं)। ऐसा लगता है कि उच्चतम न्यायालय ने दूसरे दृष्टिकोण का पालन किया है, लेकिन भारत के क्षेत्र के भीतर ("भील शायद भारत के कुछ मूल निवासियों के वंशज हैं जो देश के विभिन्न हिस्सों में विशेष रूप से दक्षिणी राजस्थान, महाराष्ट्र, मध्य प्रदेश, आदि में रहते हैं"[105])। साथ ही, यह समझना चाहिए कि भारत में आदिवासी शब्द उन लोगों पर लागू होता है, जिन्हें 'प्रभावी समुदाय से पृथकता को चिह्नित करने' के लिए समुदाय से बाहर के लोगों द्वारा इस तरह सम्बोधित किया जाता है। यह भी ध्यान में रखा जाना चाहिए कि इस शब्द को अब सम्बन्धित लोगों द्वारा आत्मसात किया गया है और वे इसे 'सशक्तिकरण के लिए मुखर अभिव्यक्ति के उपकरण' के रूप में उपयोग करते हैं (क्साक्सा, 1999)।

निष्कर्ष

राष्ट्र निर्माण में भारत एक अद्वितीय अभ्यास है। अलग–अलग भाषा बोलने वाले, अलग–अलग धर्मों का पालन करने वाले और सामाजिक और सांस्कृतिक प्रथाओं की बहुलता के साथ अलग–अलग समुदाय एक 'राष्ट्र' बनाने के लिए एक साथ आए हैं और जिसके लिए उन्होंने एक संविधान तैयार किया है जो अपने सभी नागरिकों को मौलिक अधिकारों के रूप में बुनियादी मानवाधिकारों की गारण्टी देता है। विविधता की रक्षा के लिए, यह अल्पसंख्यकों और अन्य छोटे समूहों के साथ–साथ सामाजिक और आर्थिक रूप से वंचित समूहों जैसे अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों को विशेष अधिकार प्रदान करता है। लेकिन उद्देश्य सभी को समान भागीदार के रूप में एकीकृत करना है, न कि किसी 'बाड़े' का निर्माण करना। कोई अन्दरूनी और बाहरी व्यक्ति नहीं हैं, कोई मूल और विदेशी आबादी नहीं है। यह एक जन, एक देश है। अन्तर्राष्ट्रीय चर्चाओं में नामपद्धतियों को लेकर भारत जो रुख अपनाता है, वह इस बुनियादी स्थिति पर आधारित और सुसंगत होना चाहिए। यह मानव आनुवंशिक संसाधनों सहित आनुवंशिक संसाधनों के लाभ–साझाकरण,[106] पारम्परिक ज्ञान की सुरक्षा, जैविक संसाधनों के संरक्षण, स्वास्थ्य देखभाल और जलवायु नियन्त्रण और पर्यावरण संरक्षण में पारम्परिक चिकित्सा प्रणालियों के अधिक से अधिक उपयोग पर अपनी नीतियों के अनुरूप होना चाहिए, जो आपस में जुड़े हुए हैं। किसी भी समूह की नामपद्धति के बावजूद भारत को यह देखने का प्रयास करना चाहिए कि सभी भारतीय समान रूप से विकास के लाभ प्राप्त करने के लिए सक्षम हैं ताकि कुछ वर्षों में देश में सामाजिक और आर्थिक रूप से वंचित समूह न हों। अन्ततः राष्ट्रों के समूह में अपना उचित स्थान लेने में यही भारत को सक्षम बनाएगा।

पदटिप्पणियां

1 https://www-iwgia-org/en/india-html. 29 सितम्बर 2021 को प्राप्त किया गया।

2 इस विषय पर आर.आई.एस. संकाय द्वारा निकाले गए कुछ महत्वपूर्ण प्रकाशन निम्नलिखित हैंरू चतुर्वेदी, सचिन, 2007. "ट्रिप्स, इण्डिजिनस नॉलेज एण्ड जॉग्रफिकल इण्डिकेशन्स"। वर्ल्ड ट्रेड एण्ड डेवल्पमेण्ट रिपोर्ट, आर.आई.एस., नई दिल्ली। धर, बिस्वजीत और अनुराधा आर.वी., 2005. ऐक्सेस, बेनिफिट शेयरिंग, इण्टलेक्चुयल प्रॉपर्टी राइट्सः एस्टैब्लिशिंग लिंकेजेस बिट्वीन दि एग्रीमेण्ट ऑन ट्रिप्स एण्ड द कनेन्शन ऑन बायोलॉजिकल डाइवर्सिटी

http://wtocentre-iift-ac-in/Papers/2 पर पी.डी.एफ. 27 नवम्बर 2010 को उपलब्ध। धार, बिस्वजीत, 2010। "जैविक विविधता पर समझौता सम्मेलन और ट्रिप्स पर समझौतारू मुद्दे और चिन्ताएं।" टिप्पणियों के लिए आन्तरिक नोट परिचालित, विकासशील देशों के लिए अनुसन्धान और सूचना प्रणाली, नई दिल्ली। जोसेफ, रेजी के. 2010। एक्सेस एण्ड बेनिफिट शेयरिंग पर अन्तर्राष्ट्रीय शासनरू अब हम कहां हैं? एशियन बायोटेक्नॉलजी एण्ड डेवलपमेण्ट रिव्यू, 12 क्रं. 3, पृष्ठ 77–94 में। आर.आई.एस.। धर, विश्वजीत, जेम्स टी.सी. और पाण्डे, विनायक, आर.आई.एस. 2014। भारत में ए.बी.एस. कार्यान्वयन पर राष्ट्रीय अध्ययन। जेम्स टी.सी. और पाठक, नम्रता, 2018। टी.सी.एम. (स्कोपिंग पर्चा) के राष्ट्रीय और वैश्विक संवर्धन के लिए चीन की नीतिगत पहल, आर.आई.एस.। जेम्स टी.सी. और पाठक, नम्रता, 2018। भारत में पारम्परिक ज्ञान का संरक्षण (स्कोपिंग पर्चा), आर.आई.एस.। जेम्स टीसी और पाठक, नम्रता। 2018 भारत में पारम्परिक सांस्कृतिक अभिव्यक्तियों का संरक्षण (स्कोपिंग पेपर), आर. आई.एस.। जेम्स टी.सी. और पाठक, नम्रता, 2019. भारत में औषधीय वनस्पति आनुवंशिक संसाधनों का संरक्षण (स्कोपिंग पर्चा), आर.आई.एस.। जेम्स टी.सी., पाठक, नम्रता और भटनागर, अपूर्वा, 2020। टी.सी.एम. के राष्ट्रीय और वैश्विक संवर्धन के लिए चीन की नीतिगत पहल, आर.आई.एस.। जेम्स टी.सी., पाठक, नम्रता और भटनागर, अपूर्वा, 2021। पारम्परिक ज्ञान, पारम्परिक सांस्कृतिक अभिव्यक्तियों और वनस्पति आनुवंशिक संसाधनों के संरक्षण पर गहन अध्ययन, आर.आई.एस.।

[3] https://www.un.org/ga/search/views_doc.asp\symbol¾A-CONF-199/20&Lang=E

[4] वही

[5] 173 बार। देखें https://www.un.org/ga/search/view_doc-asp\symbol¾A/CONF-199/20&Lang=E

[6] द न्यू ऑक्सफर्ड ऑफ इंगलिश, 1998

[7] वही

[8] सर थॉमस ब्राउन (1646य 6वां संस्करण, सम्पादित, 1672) सूडोडॉक्सिया एपिडेमिका टप (पृष्ठ 370–378), शिकागो विश्वविद्यालय। 16 नवम्बर, 2021 को http://penelope-uchicago.edu/pseudodoÛia/pseudo610-html पर प्राप्त।

[9] नेल्सन मण्डेला अपनी आत्मकथा, लॉन्ग वॉक टु फरीडम में कहते हैंरू "मुझे अभी तक यह नहीं पता था कि हमारे देश का वास्तविक इतिहास मानक ब्रिटिश पाठ्यपुस्तकों में नहीं पाया जाना था, जिसमें दावा किया गया था कि दक्षिण अफ्रीका की शुरुआत जैन वैन रीबेक के 1652 में केप ऑफ गुड होप में उतरने के साथ हुई थी" (पृष्ठ 27)। हाल ही तक, संयुक्त राज्य अमेरिका के इतिहास की अधिकांश मानक पुस्तकें जैसे एलन नेविस व अन्य के अ पॉकेट हिस्ट्री ऑफ दि यूनाइटेड स्टेट्स (1942), यूरोपीय आगन्तुकों के आ बसने और उनके द्वारा उपनिवेशों की स्थापना के साथ शुरू हुई। हाल ही में, यूरोपीय लोगों के पहले के लोगों के दृष्टिकोण से इतिहास को बयान करने वाले रोक्सैन डनबर–ऑर्टिज की ऐन इण्डिजिनस पीपल्स हिस्ट्री ऑफ दि युनाइटेड स्टेट्स (2014) जैसे प्रयास किए गए हैं।

[10] संयुक्त राष्ट्र महासभा प्रेस विज्ञप्ति (जी.ए./10612) 13 सितम्बर 2007 को। लोक सूचना विभाग ■ समाचार और मीडिया प्रभाग ■ न्यूयॉर्क। 107वीं और 108वीं बैठकें (सुबह और दोपहर)।

[11] प्रस्ताव क्रमांक 61/295

[12] https://www.un.org/press/en/2007/ga10612.doc.htm 29 सितम्बर 2021 को प्राप्त।

[13] https://www.un.org/press/en/2007/ga10612.doc.htm 29 सितम्बर 2021 को प्राप्त।

[14] वही।

[15] आई.एल.ओ. सम्मेलन, अनंतिम रिकॉर्ड, छियत्तरवां सत्र (1989), परिशिष्ट 25, पृष्ठ 25ध्3, अनुच्छेद 12। आई.एल.ओ. कन्वेंशन क्रमांक 169 को अपनाने के बाद से स्वदेशीयय लोगों के अधिकारों पर एक उपयोगकर्ता के परिप्रेक्ष्य में उद्धृत। 21 नवम्बर 2021 को https://minorityrights.org/2019/07/01/rights&indigenous&peoples&ilo/ पर देखा गया।

[16] वही। बेनेडिक्ट किंग्सबरी, इण्डिजिनस पीपल्स इन इण्टर्नैशनल लॉः अ कन्स्ट्रक्टिविस्ट अप्रोच टु दि एशियन कॉण्ट्रॉवर्सी, 92 का उल्लेख Am- J- Int'l L. 414 (1998), p.418।

[17] वही।

[18] मानव अधिकारों की सार्वभौम घोषणा (यू.डी.एच.आर.), 1948, अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन कन्वेन्शन (आई.एल.ओ.) 1957 के स्वतन्त्र देशों में स्वदेशीयय और अन्य जनजातीय और अर्ध–जनजातीय आबादी के संरक्षण और एकीकरण के सम्बन्ध में, कन्वेन्शन क्रमांक 169 स्वदेशीयय और जनजातीय लोगों के सम्बन्ध में 1989 के स्वतन्त्र देशों में लोग और स्वदेशीयय लोगों के अधिकारों पर संयुक्त राष्ट्र घोषणा, 2007।

[19] https://www.un.org/development/desa/indigenouspeoples/about&us-html

[20] स्वदेशीयय आबादी के खिलाफ भेदभाव की समस्या पर जोस आर. मार्टिनेज कोबो का अध्ययन जो द स्टेट ऑफ द वर्ल्ड्स इण्डिजिनस पीपल्स में उद्धृत किया गया हैः खण्ड 1, संयुक्त राष्ट्र का आर्थिक और सामाजिक मामलों का विभागय क्रमांक ST/ESA/328. ISBN 92–1–130283–7: UN 2009।

[21] वही।

[22] https://www.education.gov.in 30 दिसम्बर 2021 को देखा गया। आंकड़े 2001 की जनगणना के आधार पर हैं।

[23] वही। भारत के संविधान के अनुच्छेद 351 के तहत संस्कृत को विशेष दर्जा प्राप्त है। वर्ष 2004 में भारत सरकार ने उन भारतीय भाषाओं को को 'शास्त्रीय भाषा' घोषित करने का निर्णय किया, जो कुछ आवश्यकताओं की पूर्ति करती हैं। इस प्रकार की घोषणा के मानदण्ड हैं 1,500–2,000 वर्षों की अवधि में उस भाषा के प्रारम्भिक ग्रन्थोंधरिकॉर्ड किए गए इतिहास की उच्च पुरातनता, प्राचीन साहित्यध् ग्रन्थों का एक निकाय, जिसे अनेक पीढ़ियों से उस भाषा के बोलने वालों द्वारा मूल्यवान विरासत माना जाता है, मूल साहित्यिक परम्परा, और शास्त्रीय भाषा और साहित्य, जो आधुनिक से भिन्न हो। निम्नलिखित भाषाओं को शास्त्रीय भाषाएं घोषित किया गया हैरू तमिल (2004), संस्कृत (2005), कन्नड़ (2008), तेलुगु (2008), मलयालम (2013) और उड़िया (2014)।

[24] अंग्रेजी और विदेशी भाषा विश्वविद्यालय (पूर्व में केन्द्रीय अंग्रेजी और विदेशी भाषा संस्थान),

हैदराबाद में अंग्रेजी, अरबी, चीनी, फ्रेंच, जर्मन, स्पेनिश, इतालवी, रूसी, जापानी, कोरियाई, फारसी और तुर्की में अध्ययन–पाठ्यक्रम हैं। देखें https://www.efluniversity.ac.in.

[25] http://www.ilo.org/dyn/normleÛ/en/f\p¾NORMLEXPUB:12100:0::NO::P12100_INSTRUMENT _ID:312314 पर उपलब्ध।

[26] https://www-ilo-org/dyn/normleÛ/en/f\p¾NORMLEXPUB:12100:0::NO::P12100_ILO_CODE:C169 पर उपलब्ध।

[27] द प्रोटेक्शन ऑफ ट्रेडिशनल नॉलेजय ड्राफ्ट आर्टिक्ल्स फैसिलिटेटर रिव्यू (जून 19, 2019)।

[28] विश्व स्वास्थ्य संगठनय स्वदेशीय आबादियांः 2015, हारफील्ड, एस.जी., डेवी, सी. मैकआर्थर व अन्य में उद्धृत स्वदेशीय प्राथमिक स्वास्थ्य देखभाल सेवा की विशेषताएं वितरण मॉडलरू एक व्यवस्थित स्कोपिंग समीक्षा, ग्लोबल हेल्थ 14, 12 (2018) में। https://doi.org/10.1186/s12992-018-0332-2 पर उपलब्ध।

[29] टोनी जोसेफ कहते हैं, यह वह वाक्यांश है जो हम सबसे अधिक बार सुनते हैं जब हम अपने गहरे इतिहास को समझने की कोशिश करते हैंः पृष्ठ 5।

[30] पीटर स्टोबियस स्टोल और ऐन्या फॉन हान "भाग II: इण्डिजिनस पीपल्स, इण्डिजिनस नॉलेज एण्ड इण्डिजिनस रिसोर्सेस इन इण्टर्नैशनल लॉ" सिल्के फॉन ल्युविन्सकी (सं), इण्डिजिनस हेरिटेज एण्ड इण्टलेक्चुअल प्रॉपर्टी, जेनेटिक रिसोर्सस ट्रेडिशनल नॉलेज एण्ड फोकलोर (2004), 5, 5। थाई लॉ जर्नल, 2009, वसन्त अंक 1, खण्ड 2 में उद्धृत।

[31] विभाजन के समय धर्म के आधार पर बड़े पैमाने पर लोगों का आवागमन हुआ, लेकिन यह उस तत्कालीन देश की सीमाओं के भीतर था जो (इस आवागमन के बाद) धार्मिक आधार पर दो भागों में बंट गया था।

[32] टोनी जोसेफ, 2018। अर्ली इण्डियन्सय पृष्ठ xiv; जगर्नौट

[33] भारत सरकार, शिक्षा मन्त्रालय। शीर्षक, प्रथम प्रकाशन का वर्ष और लेखक का नाम उपलब्ध नहीं है। तथापि, कागज में यथोचित सन्दर्भ हैं।

[34] अन्य मानवनुमा जैसे होमो निएण्डर्थेलेन्सिस, होमो इरेक्टस, पहले ही इस और दुनिया के अन्य हिस्सों में चले गए हैं और जब होमो सेपियन्स (वर्तमान मानव) आए तो उन्होंने उनके साथ अन्तर–प्रजनन किया। अध्ययनों से पता चला है कि "सभी गैर–अफ्रीकियों में निएण्डर्थल जीनोम का लगभग 2 प्रतिशत हिस्सा होता है" जोसेफ, 38।

[35] राइक; पृष्ठ 129

[36] जोसेफ; पृष्ठ 63

[37] नरसिंहन व अन्य (2018); पृष्ठ 13–14

[38] नरसिंहन व अन्य (2019); पृष्ठ 1 संक्षेप

[39] ये शायद सबसे अच्छी शब्दावली नहीं हैं क्योंकि पूर्वजों का क्षेत्र पूरे दक्षिण एशिया को व्यापता है।

[40] वही, पृष्ठ 135

[41] वही, पृष्ठ 136

[42] जनगणना 1931; परिचय पृष्ठ 2

[43] एच.एच. रिस्ले, ई.ए. चाल, भारत की जनगणना पर रिपोर्ट, 1901, खण्ड 1, भाग 1, कलकत्ता 1903य पृ. 514। दासगुप्ता, संजुक्ता (2019) द्वारा उद्धृतय पृ. 112।

[44] https://censusindia.gov.in/Data_Products/Library/Indian_perceptive_link/Census_Questionaires_link/questions.htm दिनांक 5.11.21

[45] वे मुण्डा जनजाति के थे।

[46] संविधान सभा की बहसें खण्ड I 9–121946, पृ.143

[47] वही, पृ. 145

[48] संविधान सभा की बहसें खण्ड IX 5 सितम्बर, 1949, पृ.994

[49] संविधान सभा की बहसें 5 सितम्बर, 1949, पृ.996

[50] वही

[51] वही

[52] वही, पृ.995

[53] भारत के संविधान की धारा 14

[54] संविधान सभा की बहसें 24 नवम्बर, 1949, पृ.894

[55] भुवनेश्वर साबर (2012)रू "क्वेस्टिंग हिस्ट्रीरू एक्सक्लूडेड एण्ड स्टेट रिस्पॉन्स टु डिमाण्ड्स फॉर इंक्लूजन", इकॉनॉमिक एण्ड पोलिटिकल वीकली में, जून 30, 2012; खण्ड XLVII, क्रमांक 26 व 27, पृ. 241–248।

[56] अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति की सूची के संशोधन पर भारत सरकार द्व ारा 1 जून 1965 को श्री बी.एन. लोकुर, सचिव, कानून मन्त्रालय, स्थापित किया गया, सामाजिक सुरक्षा विभाग की अध्यक्षता में सलाहकार समिति की रिपोर्ट। रिपोर्ट की प्रतिकृ ति यहां उपलब्ध है https://tribal-nic-in/downloads/Statistics/OtherReport/LokurCommitteeReport.pdf

[57] https://www.brlf.in/wp&content/uploads/2018/05/Statistical-Profile-of-STs_2013.pdf

[58] मारी चन्द्रा बनाम सेठ, जी.एस. मेडिकल कॉलेज (1990) 3 SCC 130; कार्य समिति बनाम भारत संघ (1994) 5 SCC 244।

[59] https://www.brlf.in/wp&content/uploads/2018/05/Statistical-Profile-of-STs_2013.pdf

[60] https://www.brlf.in/wp-content/uploads/2018/05/Statistical-Profile-of-STs_2013.pdf

[61] https://www.brlf.in/wp-content/uploads/2018/05/Statistical-Profile-of-STs_2013.pdf

[62] भारत का उच्चतम न्यायालय। 5 जनवरी 2011 को कैलास और अन्य बनाम महाराष्ट्र राज्य ट्र.तालुका। न्यायालय ने कैम्ब्रिज हिस्ट्री ऑफ इण्डिया (खण्ड–I), एन्शियण्ट इण्डिया से एक लम्बा उद्धरण लिया है।

[63] वही

[64] बेंग्ट जी. कार्लसनय एशियन इण्डिजिनसनेसरू द केस ऑफ इण्डिया, इण्डिजिनस अफेयर्स में, 3–4/08 https://www.iwgia.org/images/publications/IA_3-08_India.pdf.

[65] https://www.hindustantimes.com/india/intl-legal-regime-can-t-take-away-power-of-local-courts/story-0lHkmaPqIhdÛN6wVLwvUSL-html

[66] ट्राइबल डेवलपमेण्ट सिन्स इण्डिपेण्डेन्स, सम्पादित श्याम नन्दन चौधरी, गूगल बुक्स, पृ. 25 में।

[67] भारत सरकार, गृह मन्त्रालय। कार्यालय आदेश संख्या एफ. 11011/53/2012–एनई.वी दिनांक 27 सितम्बर 2012

[68] 2019 का लोकसभा विधेयक संख्या 370। नागरिकता अधिनियम, 1955 में और संशोधन करने के लिए प्रस्तुत विधेयक, दिनांक 4 दिसम्बर 2019।

[69] अधिनियम की धारा 2 (सी)।

[70] के.एस. सिंह (1996); आदिवासी जीवित रहने के लिए संरक्षण करते हैं। "डाउन टु अर्थ" के लिए अमित मित्रा द्वारा रिकॉर्ड किया गया साक्षात्कार www.downtoearth.org.in/interviews/tribals-conserve-to-survive-25422; 29 फरवरी 1996 को प्रकाशितय 27 दिसम्बर 2021 को पुनः प्राप्त।

[71] धाराएं 330–342

[72] धारा 244 (2)

[73] धारा 244 (2)

[74] 2007 की अधिनियम संख्या 2

[75] वही

[76] माइकल ए. पीटर्स और कार्ल टी. मीका (2017) एबॉरिजिन, इण्डियन, इण्डिजिनस ऑर फर्स्ट नेशन्स? एजुकेशनल फिलॉसफी एण्ड थियरी, 49:13, 1229–1234, DOI 10.1080/00131857.2017.1279879 में

[77] वही

[78] द रोल ऑफ एथनिक एण्ड इण्डिजिनस पीपुल ऑफ इण्डिया एण्ड देयर कल्चर इन द कन्सर्वेशन ऑफ बायोडाइवर्सिटी, राजीव राय और विजेन्द्र नाथ http://www.fao.org/3/Ûii/0186&a1.htm 7 अक्टूबर 2021 को देखा गया।

[79] डनबार–ऑर्टिज, पृ. xiii

[80] मायनॉरिटी राइट्स ग्रुप इण्टर्नेशनल, अल्पसंख्यकों और स्वदेशीयय लोगों की विश्व निर्देशिका—भारत; आदिवासी, 2008, https://www.refworld.org/docid/49749d14c.html पर उपलब्ध। 12 नवम्बर 2021 को देखा गया।

[81] राणा एल.एन. (1992) दि आदिवासी महासभा (1938–1949): लॉञ्चिंग पैड ऑफ द झारखण्ड मूवमेण्टय प्रोसीडिंग्स ऑफ दि इण्डियन हिस्ट्री कांग्रेस, 53, 397–405; http://www.jstor.org/stable/44142817

[82] दासगुप्त एस. आदिवासी स्टडीज: फ्रॉम ए हिस्टॉरियन्स पर्स्पेक्टिवय हिस्ट्री कम्पासय 2018, 312428 https://doi.org/10.1111/hic3.12486

[83] अम्बेडकर, पृ.248–249

[84] वही

[85] वही। प्रसंगवश उल्लेख किया जाना चाहिए कि वल्लभभाई पटेल भी यही धारणा रखते थे।

[86] दि इण्डियन इकॉनॉमिक एण्ड सोशल हिस्ट्री रिव्यू, 53, 1 (2016): 1–23 सेज लॉस एंजिलिस/लन्दन/नई दिल्ली/सिंगापुर/वाशिंगटन डी.सी. DOI 10.1177ध्0019464615619549

[87] एल.एन. रंगराजन (1990) अपनी रचना के अंग्रेजी अनुवाद की प्रस्तावना में।

[88] वही, पृ.44

[89] वही, पृ.135

[90] "ऐतिहासिक रूप से सबसे पहले दर्ज गोण्ड राज्य 14वीं और 15वीं शताब्दी ईस्वी में मध्य भारत के पहाड़ी क्षेत्र में पनपे थे। पहला गोण्ड राजा जदुराय था, जिसने गढ़ मण्डला (1300 से 1789 ईस्वी) के राज्य को हथियाने के लिए कलचुरी राजपूतों को अपदस्थ किया था। दूसरा गोण्ड राज्य देवगढ़ का था, जो 1590 ई. में राजा जटबा द्वारा बनाया गया था और यह 1796 ईस्वी तक चला। देवगढ़ के ही समय में, खेरला राज्य भी 1500 ईस्वी में अस्तित्व में आया और एक शताब्दी तक बना रहा। इस राज्य के पहले राजा नरसिंह राय थे, जिन्होंने एक राजपूत शासक को अपदस्थ कर यह राज्य प्राप्त किया। नरसिंह राय का आसपास के उन राजपूत और मुस्लिम शासकों के साथ जुड़ाव और बैर का परस्पर मिश्रित सम्बन्ध था, जिन्होंने भौगोलिक निकटता के कारण उनके किले पर आक्रमण किए। चन्दा राज्य (1200 से 1751 ईस्वी), खेरला और देवगढ़ राज्यों के समकालीन, ने कई उल्लेखनीय शासकों को उत्पन्न किया जिन्होंने उत्कृष्ट सिंचाई प्रणाली और गोण्ड राज्यों के बीच पहली सुपरिभाषित राजस्व प्रणाली विकसित कीय "सोशियो–कल्चरल हिस्ट्री ऑफ द गोण्ड ट्राइब्स ऑफ मिडल इण्डिया", शामराव कोरेतीय इण्टर्नैशनल जर्नल ऑफ सोशल सायन्स एण्ड ह्यूमैनिटी खण्ड 6, क्रं 4, पृ. 288 में।

[91] एनसाइक्लोपीड़िया ब्रिटैनिका में अहोम, ऑनलाइन www-https://britanica.com/topic/Ahom पर उपलब्ध; 28 दिसम्बर 2021 को देखा गया। असम में ताई–अहोम और मटक समुदाय अनुसूचित जनजाति दर्जे की मांग कर रहे हैं। देखें द हिन्दू समाचार पत्र दिनांक 27 सितम्बर 2021 https://www.thehindu.com/news/national/other-states/st-status-demand-assam-cm-himanta-meets-tai-ahom-matak-community-leaders/article36688582-ece पर।

[92] बेसिल पौलोसय इन फोटोसरू द फैसिनेटिंग स्टोरी ऑफ केरलास फॉरेस्ट किंग एण्ड हिस ट्राइब्स 700–इयर–ओल्ड लेगसी। ऑनलाइन www-https://betterindia.com/95726/kerala-forest-king-raja-raman-mannan-idukki पर उपलब्ध। 28 दिसम्बर 2021 को देखा गया।

[93] ऐण्ड्रे बेटीलय 1998; दि आइडिया ऑफ इण्डिजिनस पीपुलय करण्ट ऐन्थ्रोपॉलजी, खण्ड 39, क्रं 2, अप्रैल 1998, पृ. 187–191।

[94] इण्डिया: अ कण्ट्री स्टडी, जेम्स हाइट्जमैन और रॉबर्ट एल. वॉर्डन, सम्पादितय फेडरल रिसर्च

डिविजन, 1995; https://www.education.gov.in/en/sites/upload_files/mhrd/files/upload_document/languagebr.pdf में उद्धृत।

[95] संविधान की आठवीं अनुसूची।

[96] जनगणना 1961 और निगम 1972: पृ. xv, वही।

[97] थण्डी जकारियास, पी., 1981। एबॉरिजिनल ग्रूप्स इन इण्डिया, कल्चरल सर्वाइवल त्रैमासिक पत्रिका में। 20 अगस्त 2021 को https://www.culturalsurvival.org/publications/cultural-survival-quarterly/aboriginal-groups-india पर देखा गया।

[98] कैलास और अन्य बनाम महाराष्ट्र राज्य ट्र. तालुका, 5 जनवरी 2011 को।

[99] दि इण्डियन जर्नल ऑफ पोलिटिकल सायन्स में वी.जी. ट्रेसियम्मा के लेख "मेकिंग ऑफ दि इण्डियन कॉन्स्टिट्यूशन एण्ड डिबेट ऑन दि इश्यू ऑफ ट्राइबल डेवलपमेण्ट" खण्ड LXXII, क्रं 1, जनवरी–मार्च 2011, पृ. 179–189 से उद्धृत।

[100] बेतील, पृ.191

[101] दासगुप्त 2018, पृ. 3य आप अपनी पहले की रचना रइक्रॉफ्ट डी.जे. और दासगुप्त एस. (2011) "इण्डिजिनस पास्ट एण्ड द पॉलिटिक्स ऑफ बिलॉगिंग" का हवाला देती हैं। यह पॉलिटिक्स ऑफ बिलॉगिंग इन इण्डियारू बिकमिंग आदिवासी, पृ. 1–13, (प्रकाशक एबिंग्डन, रूटलेज) में है।

[102] यह बहुत सम्भव है कि तथाकथित अनुसूचित जनजातियों में से कई भारतीय उपमहाद्वीप में सबसे शुरुआती बसने वाले मानव समूहों से सम्बन्धित हों, लेकिन यह अनिश्चित दूरस्थ अवधि में है।

[103] सांस्कृतिक उत्तरजीविता। संयुक्त राष्ट्र मानवाधिकार परिषद, सार्वभौम आवधिक समीक्षा 2016 के लिए भारत में स्वदेशीयय लोगों के मानवाधिकारों की स्थिति पर टिप्पणियां तैयार की गईं; 27वां सत्रय तीसरा आवर्तन www.cs.org.

[104] https://dictionary.cambridge.org/dictionary/english/indigenous

[105] कैलास और अन्य बनाम महाराष्ट्र राज्य, 2011।

[106] चतुर्वेदी, एस., क्रैगर, एस., लडिकास, एम., मुथुस्वामी, वी., सु, वाई., और यांग, एच. (2012)य मानव आनुवंशिक संसाधनों और लाभों के साझाकरण पर नीति में सामंजस्य स्थापित करना, नेचर बयोटेक्नॉलजी, खण्ड 30, क्रं 12, दिसम्बर 2012 में।

सन्दर्भ

अम्बेडकर, बी.आर. 1936. ऐनिहिलेशन ऑफ कास्ट। एस. आनन्द नवायना का सटीक महत्वपूर्ण संस्करण, नई दिल्ली, 2014।

बनर्जी, प्रथमा. 2016. "राइटिंग द आदिवासीरू सम हिसटोरियोग्राफिकल नोट्स" इंडियन इकोनॉमिक एण्ड सोशल हिस्ट्री रिव्यू में, 53, 1 (2016)रू 1–23 सेज लॉस ऐंजिलिस/लन्दन/नई दिल्ली/सिंगापुर/वाशिंगटन डी.सी. डी.ओ.आई.रू 10.1177/001946461561954।

बेटील, आन्द्रेय. 1998. द आइडिया ऑफ इण्डिजिनस पीपुल। करण्ट ऐन्थ्रोपॉलॉजीय खण्ड 39, क्रमांक 2, 187–192. http://www-jstor-org/stable/10-1086/204717

चतुर्वेदी, सचिन. 2007. कानी केस। अ रिपोर्ट फॉर जेनबेनिफिटय यहां उपलब्ध है: www-uclan-ac-uk/genbenefit और http://www-ris-org-in/images/RIS_images/pdf/ पर भी। SACHIN_CHATURVEDI-pdf

संविधान सभा की बहसें. 1946–1949. लोकसभा सचिवालय, नई दिल्ली। चौथा पुनर्मुद्रित खण्ड ᑊ से ᑭ तक 5 खण्डों (2003) में।

दासगुप्ता, संगीता. 2018. आदिवासी स्टडीजरू फ्रॉम अ हिस्टॉरियन्स पर्सपेक्टिव इन हिस्टरी कम्पास, सितम्बर 2018। रिसर्च गेट पर उपलब्ध है।

फैजी एस. और नायर, प्रिया के.य आदिवासीसरू द वर्ड्ल्स लार्जेस्ट पॉपुलेशन ऑफ इण्डिजिनस पीपुल, सिटिजेन्स फॉर जस्टिस एण्ड पीस में। https://cjp-org-in/wp&content/uploads/2021/08/Adivasis&Indias&IPs&faizi&and&nair-pdf आई. डबल्यू.जी.आई.ए. (इण्टर्नैशनल वर्क ग्रुप फॉर इण्डिजिनस अफेअर्स) (2021). द इण्डिजिनस वर्ल्ड. 2021. कोपेनहेगन, डेन्मार्क।

जोसेफ, टोनी. 2018. अर्ली इण्डियन्सरू द स्टोरी ऑफ आर ऐन्सेस्टर्स एण्ड वेयर वी केम फ्रॉमः जगर्नॉट, नई दिल्ली।

कार्लसन, बेंग्टय 2008य एशियन इण्डिजिनसनेसरू द केस ऑफ इण्डिया इण्डिजिनस अफेयर्स मेंय 3–4ध्08 ीजजचेरूध्ध्ूूूपूहपं.वतहध्पउंहमेध्चनइसपबंजपवदेध्‌ ।ऋ3–08ऋप्दकपं.चकि पृष्ठ 24–20।

कौटिल्य. 1987. अर्थशास्त्रय एल.एस. रंगरजन द्वारा सम्पादित, पुनर्व्यवस्थित, अनूदित और प्रस्तुतः पेंग्विन बुक्स, नई दिल्ली।

कोरेटी, शामराव. 2016. ″सोशिओ–कल्चरल हिस्ट्री ऑफ द गोण्ड ट्राइब्स ऑफ मिडल इण्डिया″ इण्टर्नैशनल जर्नल ऑफ सोशियल साइन्स एण्ड हयूमैनिटी, खण्ड 6, क्रं. 4 मेंः पृष्ठ288–292, 2016।

माइनॉरिटी राइट्स ग्रुप. 2019. अ प्रैक्टिशनर्स पेर्स्पेक्टिव ऑन द राइट्स ऑफ इण्डिजिनस पीपल्स सिन्स द ऐडॉप्शन ऑफ आई.एल.ओ. कन्वेन्शन नम्बर 169ः https://minorityrights-org/2019/07/01/rights&indigenous&peoples&ilo/ पर उपलब्ध।

नरसिंहन वी.एम., ऐन्थनी डी. मैलरी जे. और राइक डी. 2018. द जेनोमिक फॉर्मेशन ऑफ साउथ एण्ड सेण्ट्रल एशियाः bioRÛiv: 292581

नरसिंहन एवं अन्य. 2019. ″द फॉर्मेशन ऑफ ह्यूमन पॉपुलेशन्स इन साउथ एण्ड सेण्ट्रल एशियाय साइन्स, 365 में (6457)ः eaat7487

परमार, पूजा, 2012य अनडुइंग हिस्टॉरिकल रॉङ्गसरू लॉ एण्ड आईडेण्टिटी इन इण्डियाः ऑसगुड हॉल लॉ जर्नलय 49ः पृष्ठ 491–525।

परमार, पूजा. 2015. इण्डिजेनेटी एण्ड लीगल प्लूरलिजम इन इण्डियाः क्लेम्स, हिस्ट्रीस, मीनिंग्सय केम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, न्यू यॉर्क।

पीटर एण्ड मीका, माइकल ए. पीटर्स और कार्ल टी. मीका. 2017. एबॉरिजिन, इण्डियन, इण्डिजिनस ऑर फर्स्ट नेशन्स? एजुकेशनल फिलॉसॉफी एण्ड थियरी में, 49ः13, 229–1234, DOI, 10.1080ध्00131857.2017.1279879।

पिल्लई, अनीश वी. 2014. प्रोटेक्शन ऑफ राइट्स ऑफ इण्डिजिनस पीपुलरू इण्टर्नैशनल एण्ड

नैशनल पर्सपेक्टिव भारती लॉ रिव्यू में, अप्रैल–जून 2014।

राइक, डेविड. 2018. हू आर वी एण्ड हाऊ वी गॉट हियरः एन्शियण्ट डी.एन.ए. एण्ड द न्यू साइन्स ऑफ द ह्यूमन पास्ट, दक्षिण एशिया संस्करण, ऑक्सफर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली।

रॉय, बर्मन जे.जे. 2009. "आदिवासीकृअ कण्टेन्शियस टर्म टु डिनोट ट्राइब्स ऐस इण्डिजिनस पीपल्स ऑफ इण्डिया" http://www-sacw-net/article1066-html

त्रेसियम्मा, वी.जी. 2011. मेकिंग ऑफ द इण्डियन कॉन्स्टिट्यूशन एण्ड डिबेट ऑन द इश्यू ऑफ ट्राइबल डेवलपमेण्ट, इण्डियन जर्नल ऑफ पोलिटिकल साइन्स मेंः खण्ड LXII, क्रं 1, जनवरी–मार्च 2011ः पृष्ठ 179–189।

त्रिपाठी, मनोरमा, त्रिपाठी, पियूष, चौहान, उगम कुमारीय हेरेरा, रीन जे. और अग्रवाल, सुरक्षा. 2008. "अलु पॉलिमॉर्फिक इन्सर्शन्स रिवील जेनेटिक स्ट्रक्चर ऑफ नॉर्थ इण्डियन पॉपूलेशन्स", ह्यूमन बायोलॉजी मेंः खण्ड 80, क्रं. 5 (अक्टूबर 2008), पृष्ठ 483–499य वेयन स्टेट यूनिवर्सिटी प्रेस, ह्यूमन बायोलॉजी।

क्साक्सा, वर्जिनियस, 1999य ट्राइब्स ऐस इण्डिजिनस पीपुल ऑफ इण्डिया, इकॉनॉमिक एण्ड पोलिटिकल वीकली में, दिसम्बर 18–24, 1999ः खण्ड 34, क्रं. 51 (दिसम्बर 18–24, 1999), पृ. 3589–3595 https://www-jstor-org-/stable/4408738

आरआईएस परिचर्चा पत्र

http://www-ris-org-in/dicussion&paper पर उपलब्ध।

डीपी#271–2021 रोल ऑफ इण्डियन सायन्स कांग्रेस एसोसिएशन इन दि इमर्जेन्स ऑफ सायण्टिफिक कम्यूनिटी इन प्री–इण्डिपेण्डेन्स इण्डिया,स्नेहा सिन्हा

डीपी#270–2021 कोविड–19: ऐन ऑपरच्यूनिटी टु रिवैम्प द फार्मा कोविजिलेन्स सिस्टम, सौम्या पाठक, राजेश्वरी सिंह और शुभीनी ए. सराफ

डीपी#269–2021 स्किलिंग, फल्क्रम ऑफ अ प्रोऐक्टिव मल्टिडायमेन्शनल पॉवर्टी ट्रैकर पाथवे, प्रमोद कुमार आनन्द और कृष्ण कुमार

डीपी#268–2021 इण्डियाज इम्पोर्ट डिपेण्डेन्स ऑन चाइना इन फार्मस्यूटिकल्स: स्टेटस, इश्यूस एण्ड पॉलिसी ऑप्शन्स, सुदीप चौधरी

डीपी#267–2021 लिबरेटिंग इण्डियन ऐग्रिकल्चर मार्केट्स, दम्मू रवि

डीपी#266–2021 इण्ट्रा–इण्डस्ट्री ट्रेड इन मैन्युफैक्चर्ड गुड्स: अ केस ऑफ इण्डिया, मनमोहन अग्रवाल और नेहा बेतई

डीपी#265–2021 नैशनल ए.आई. पॉलिसी/स्ट्रैटेजी ऑफ इण्डिया एण्ड चाइना: अ कम्पैरिटिव एनैलिसिस, अमित कुमार

डीपी#264–2021 फिशरीस सबसिड़ी इश्यूस बिफोर द नेक्स्ट एम.सी.12:लेसन्स फ्रॉम द मे टेक्स्ट फॉर द जुलाई मीटिंग, एस.के. मोहन्ती और पंखुड़ी गौड़

डीपी#263–2021 पोस्ट–पैण्डेमिक सोशल सेक्यूरिटी एजेण्डा: यूनिवर्सलाइजिंग डेवलपमेण्टल इण्टर्वेन्शन्स ओवर यूनिवर्सल बेसिक इनकम, प्रमोद कुमार आनन्द और कृष्ण कुमार

डीपी#262–2021 पोस्ट–कोविड चौलेंजेस: नीड ऑफ यू.एन. टु मेटामॉर्फोस–रीडिस्कवर इट्स प्राययॉरिटी एण्ड फंक्शनैलिटीस, अरुणा शर्मा

डीपी#261–2021 फार्मस्यूटिकल ट्रेड: इण्डियाज ग्रोथ ट्रैजेक्टरीस, दिनेश कुमार और टी.सी. जेम्स

डीपी#260–2020 इनफ्लेशन टार्गेटिंग: मॉनेटरी पॉलिसी, ग्रोथ एण्ड इनफ्लेशन, मनमोहन अग्रवाल और अम्मू लावण्या

डीपी#259–2020 बल्क ड्रग इण्डस्ट्री इन इण्डिया: चौलेंजेस एण्ड प्रॉस्पेक्ट्स, टी.सी. जेम्स

डीपी#258–2020 स्ट्रैटिजाइसिंग इण्डियाज एक्स्पोर्ट्स, दम्मू रवि

आरआईएस विकासशील देशों का शोध संस्थान

विकासशील देशों की अनुसंधान एवं सूचना प्रणाली (आरआईएस), नई दिल्ली स्थित एक स्वायत्त नीतिगत अनुसंधान संस्थान हैं जोकि अंतर्राष्ट्रीय आर्थिक विकास, व्यापार, निवेश एवं प्रौद्योगिकी से संबंधित मामलों पर कार्य करता है। आरआईएस प्रभावशाली नीतिगत वार्ता को बढ़ावा देने एवं वैश्विक एवं क्षेत्रिय आर्थिक मामलों के संबंध में विकासशील देशों में क्षमता निर्माण के लिए एक मंच के रूप में कार्य करता है।

आरआईएस की कार्य योजना का मुख्य केन्द्र बिन्दु दक्षिणीय सहयोग को बढ़ावा देना और विभिन्न मंचों पर बहुपक्षीय बातचीत में विकासशील देशों के साथ समन्वय करना है। आरआईएस क्षेत्रीय आर्थिक सहयोग के कई प्रयासों की अंतः सरकारी प्रक्रियाओं में कार्यरत है। आरआईएस अपने विचारकों के गहन कार्य के माध्यम से अंतर्राष्ट्रीय आर्थिक मामलों एवं विकास भागीदारी के पटल पर नीतिगत सुसंगतता को सुदृढ़ करता है।

आरआईएस एवं इसकी कार्ययोजना के संबंध में और अधिक जानकारी प्राप्त करने क लिए कृपया इसकी वेबसाइटः wwww.ris.org.in देखें।

अंतर्राष्टीय विकास के लिए नीतिगत अनुसंधान

आरआईएस
विकासशील देशों की अनुसंधान एवं सूचना प्रणाली

कोर 4–बी, चौथा तल, भारत पर्यावास केन्द्र, लोधी रोड, नई दिल्ली–110 003, भारत । दूरभाषः 91–11–24682177–80
फैक्सः 91–11–24682173–74, ई–मेलः dgoffice@ris.org.
वेबसाइट: http://www.ris.org.in